प्रकाशक

ललित मानसिंह, महानिदेशक,
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्,
नयी दिल्ली-110002

संपादक

गिरिजा कुमार माथुर

सहायक संपादक

डॉ. अमरेंद्र मिश्र

आवरण

कांतिराय

मुद्रक

वीएपी एन्टरप्राइजिज एच -24
ग्रीनपार्क एक्सटेंशन, नयी दिल्ली-
110016

शुल्क दरें

एक अंक	वार्षिक	त्रैवार्षिक
रु. 5.00	रु. 20.00	रु. 50.00
£ 1.00	£ 4.00	£ 10.00
$ 2.50	$ 10.00	$ 25.00

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् भारत सरकार के विदेश मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संगठन है। भारत व अन्य देशों के मध्य सांस्कृतिक संबंधों एवं पारस्परिक सद्भाव को स्थापित तथा सपुष्ट करने के उद्देश्य से 1950 में परिषद् की स्थापना की गया था। भारत तथा दूसरे देशों के मध्य इस सांस्कृतिक संवाद के उद्देश्य से आयोजित अपने प्रकाशन कार्यक्रम में परिषद् अन्य गतिविधियों के अतिरिक्त त्रैमासिक पत्रिकाएं भी प्रकाशित करता है जो हिंदी **(गगनाञ्चल)**, अंग्रेजी **(इंडियन हराइजन्स, अफ्रीका क्वार्टरली)** अरबी **(सक़ाफ़त-उल-हिंद)** स्पेनिश **(पपेलस-दे-ला-इंडिया)** और फ्रेंच **(रेकौत्र अवेकलैंद)** भाषाओं में हैं। हिंदी और अंग्रेजी का शुल्क दर नीचे दी गयी है। स्पेनिश, फ्रेंच और अरबी त्रैमासिक निःशुल्क हैं। 'गगनाञ्चल' के शुल्क के भुगतान से सम्बंधित पत्र-व्यवहार और प्रकाशन सामग्री के लिए संपादक, 'गगनाञ्चल' से निम्नलिखित पते पर संपर्क किया जाना चाहिए

भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्
आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट
नयी दिल्ली-110002

गगनाञ्चल

वर्ष 12, अंक 1, 1989

संस्मरण

विज्ञान

निबंध

एकांकी

यात्रा विवरण

कहानी

हास्य व्यंग्य

कविताएँ

पुस्तकें

सांस्कृतिक गतिविधियां

गोष्ठी

नरेंद्र शर्मा

डॉ. नगेंद्र

13 फरवरी, '89 की शाम को जब मैं घर लौटा तो सूचना मिली कि दूरदर्शन से टेलीफोन आया था। वे पं. नरेंद्र शर्मा के बारे में श्रद्धांजलि रिकार्ड करना चाहते थे। तत्काल ही किसी ने बताया साढ़े सात बजे के बुलेटिन में खबर थी कि दिल का दौरा पड़ने से उनका देहांत हो गया। सुनकर मन को बड़ा धक्का लगा। कुछ दिनों से उनके नाम के साथ पण्डित शब्द जुड़ गया था। इससे मुझे कभी-कभी उनको पहचानने में भ्रम हो जाता था क्योंकि मैं उन्हें केवल नरेंद्र शर्मा नाम से ही जानता था और उनकी प्रगतिशील विचारधारा के साथ पण्डित शब्द की संगति बैठाने में मुझे कुछ कठिनाई होती थी।

नरेंद्र जी के साथ मेरा व्यक्तिगत परिचय कम से कम 50 वर्ष पुराना था। मेरे और उनके जन्म-स्थान अतरौली व खुर्जा के बीच सिर्फ सत्तर किलोमीटर का फासला था लेकिन स्कूल या कालेज में हम कभी साथ नहीं पढ़े। हम दोनों ने एक-दो वर्ष के अंतराल से (वे मुझसे लगभग तीन वर्ष बड़े थे) अंग्रेजी में एम.ए. किया था और अगर इसमें कुछ अनौचित्य न हो तो यह भी कह दिया जाय कि दोनों को 'थर्डक्लास' आया था। मैंने आगरा के सेंट जान्स कालेज में शिक्षा पाई थी और वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र थे, इसलिए साथ रहने का संयोग कभी नहीं मिला। साहित्य के क्षेत्र में वे मुझसे कई वर्ष पहले प्रवेश कर चुके थे। सन् 35-36 में मेरा कविता का परिसर जहाँ कवि-सम्मेलन और कवि गोष्ठी तक ही सीमित था, उनकी रचनाएं हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं।

इलाहाबाद उस समय हिंदी साहित्य का प्रमुख केंद्र था। महादेवी जी वहीं रहती थीं। पंत जी और निराला जी भी प्रायः आते-जाते रहते थे। 'सरस्वती' प्रयाग की पत्रिका थी ही, उसके साथ अनेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकायें भी वहाँ से प्रकाशित हो रही थीं। शिक्षा के क्षेत्र में प्रो. अमरनाथ झा का वर्चस्व था। अपने मधुर कोमल स्वभाव के कारण नरेंद्र जी को इन सभी का स्नेह प्राप्त था - और एम.ए. करने के बाद प्रयाग में ही उन्होंने अपना स्थायी आवास बना लिया था।

वैसे तो मैं अलीगढ़ में आंखों के अस्पताल में एक बार उनसे अकस्मात् ही मिल चुका था, किंतु सही अर्थ में मेरा उनसे परिचय 1938 में हुआ जब मैं अपनी पहली आलोचना कृति 'सुमित्रानंदन पंत' प्रकाशित कराने से पूर्व एक बार पंत जी से साक्षात्कार करने के लिए गया हुआ था। इलाहाबाद जाकर मुझे मालूम हुआ कि पंत जी उस समय कालाकांकर में हैं और उनके विषय में पूरी जानकारी नरेंद्र जी से मिल सकेगी, जो उस समय आनंद भवन स्थित कांग्रेस के कार्यालय में - शायद पं. जवाहर लाल नेहरू के सचिव के रूप में कार्य कर रहे थे। वहाँ

कविताएँ

पुस्तकें

सांस्कृतिक गतिविधियां

गोष्ठी

संस्मरण

नरेंद्र शर्मा

डॉ· नगेंद्र

13 फरवरी, '89 की शाम को जब मैं घर लौटा तो सूचना मिली कि दूरदर्शन से टेलीफोन आया था। वे पं· नरेंद्र शर्मा के बारे में श्रद्धांजलि रिकार्ड करना चाहते थे। तत्काल ही किसी ने बताया साढ़े सात बजे के बुलेटिन में खबर थी कि दिल का दौरा पड़ने से उनका देहांत हो गया। सुनकर मन को बड़ा धक्का लगा। कुछ दिनों से उनके नाम के साथ पण्डित शब्द जुड़ गया था। इससे मुझे कभी-कभी उनकी पहचान करने में भ्रम हो जाता था क्योंकि मैं उन्हें केवल नरेंद्र शर्मा नाम से ही जानता था और उनकी प्रगतिशील विचारधारा के साथ पण्डित शब्द की संगति बैठाने में मुझे कुछ कठिनाई होती थी।

नरेंद्र जी के साथ मेरा व्यक्तिगत परिचय कम से कम 50 वर्ष पुराना था। मेरे और उनके जन्म-स्थान अतरौली व खुर्जा के बीच सिर्फ सत्तर किलोमीटर का फासला था लेकिन स्कूल या कालेज में हम कभी साथ नहीं पढ़े। हम दोनों ने एक-दो वर्ष के अंतराल से (वे मुझसे लगभग तीन वर्ष बड़े थे) अंग्रेजी में एम·ए· किया था और अगर इसमें कुछ अनौचित्य न हो तो यह भी कह दिया जाय कि दोनों का 'थर्डक्लास' आया था। मैंने आगरा के सेंट जान्स कालेज में शिक्षा पाई थी और वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के छात्र थे, इसलिए साथ रहने का सुयोग कभी नहीं मिला। साहित्य के क्षेत्र में वे मुझसे कई वर्ष पहले प्रवेश कर चुके थे। सन् 35-36 में मेरी कविता का परिसर जहाँ कवि-सम्मेलन और कवि गोष्ठी तक ही सीमित था, उनकी रचनाएं हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगी थीं।

इलाहाबाद उस समय हिंदी साहित्य का प्रमुख केंद्र था। महादेवी जी वहां रहती थीं। पंत जी और निराला जी भी प्रायः आते-जाते रहते थे। 'सरस्वती' प्रयाग की पत्रिका थी ही, उसके साथ अनेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्र-पत्रिकायें भी वहाँ से प्रकाशित हो रही थीं। शिक्षा के क्षेत्र में प्रो· अमरनाथ झा का वर्चस्व था। अपने मधुर कोमल स्वभाव के कारण नरेंद्र जी को इन सभी का स्नेह प्राप्त था – और एम·ए· करने के बाद प्रयाग में ही उन्होंने अपना स्थायी आवास बना लिया था।

वैसे तो मैं अलीगढ़ में आंखों के अस्पताल में एक बार उनसे अकस्मात् ही मिल चुका था, किंतु सही अर्थ में मेरा उनसे परिचय 1938 में हुआ जब मैं अपनी पहली आलोचना कृति 'सुमित्रानंदन पंत' प्रकाशित कराने से पूर्व एक बार पंत जी से साक्षात्कार करने के लिए गया हुआ था। इलाहाबाद जाकर मुझे मालूम हुआ कि पंत जी उस समय कालाकांकर में हैं और उनके विषय में पूरी जानकारी नरेंद्र जी से मिल सकेगी, जो उस समय आनंद भवन स्थित कांग्रेस के कार्यालय में – शायद पं· जवाहर लाल नेहरू के सचिव के रूप में कार्य कर रहे थे। वहीं

जाकर नरेंद्र जी से भेंट की, पुस्तक के कुछ प्रसंगों पर उनसे चर्चा की और पंत जी का पूरा पता लेकर दूसरे दिन कालाकांकर रवाना हो गया। नरेंद्र जी ने सौजन्यवश मेरे आने की सूचना पंत जी को तार से दे दी थी। पंत जी पर यह पहली आलोचनात्मक पुस्तक थी। इसलिए अपने दृष्टिकोण आदि के विषय में स्वयं कवि की और उनके दो एक अंतरंग मित्रों की प्रतिक्रिया जानने की इच्छा स्वभावतः मेरे मन में थी। कालाकांकर के राजभवन में लगभग तीन घंटे तक पंत जी अत्यंत सहज-सौम्य भाव से मेरी समीक्षा के विविध अंश सुनते रहे और जब मुझे यह प्रतीति हो गई कि पंत जी की प्रतिक्रिया अनुकूल है, तो मैंने अत्यंत विनय और संकोच के साथ उसके विषय में दो शब्द लिखने का प्रस्ताव पेश कर दिया। मुझे अधिक आशा नहीं थी किंतु पंत जी ने सहज भाव से मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली और तत्काल ही आठ-दस पंक्तियों में एक छोटी-सी भूमिका लिख दी। इससे पहले मैं एक प्रस्तावना श्री रामकुमार वर्मा (जो उस समय तक डॉ. नहीं थे) से भी लिखाकर ले आया था। इलाहाबाद में मेरा परिचय केवल वर्मा जी से ही था इसलिए मैं सबसे पहले उन्हीं के पास गया। बाद में मुझे अनुभव हुआ कि मेरा यह कार्य नरेंद्र जी और पंत जी दोनों को ही रूचिकर नहीं लगा था। किंतु मेरे सामने अब कोई विकल्प नहीं था और पहले संस्करण में तो पंत जी के 'दो शब्द' के साथ वर्मा जी की प्रस्तावना भी यथावत् प्रकाशित हुई। कालाकांकर से लौटकर एक बार मैं फिर नरेंद्र जी को धन्यवाद देने गया और यथासमय दिल्ली लौट आया – इस घटना के बाद हम दोनों के बीच स्निग्ध संबंध-सूत्र स्थापित हो गया जो उनके दिवंगत हो जाने के बाद भी मेरे मन में यथावत् बना हुआ है।

वर्तमान शती के चौथे दशक के उत्तरार्द्ध में भारतीय राजनीति और देश के बुद्धिजीवियों के एक विशेष वर्ग में मार्क्स दर्शन का प्रभाव बढ़ रहा था – पंत जी भी, शायद अपने मन की अतिशय कोमल कल्पनाओं की प्रतिक्रिया के रूप में इस दिशा में अग्रसर हो रहे थे और उस नवीन चिंतन-प्रक्रिया को मूर्त रूप देने के विचार से 1938 के आसपास उन्होंने 'रूपाभ' पत्रिका के प्रकाशन का आयोजन किया। सह-संपादक के रूप में नरेंद्र इस योजना में प्रतिभागी थे। 'रूपाभ' पत्रिका एक नया संकल्प तथा उत्साह लेकर प्रकाशित हुई थी और हिंदी के अनेक प्रगतिशील युवा लेखकों का सहयोग उसे सहज ही प्राप्त हो गया था। 'युगवाणी' में संकलित पंत जी की अनेक कविताएं और नरेंद्र शर्मा तथा कतिपय अन्य कवियों की रचनाएं मूलतः इसी में प्रकाशित हुई थीं। मेरी पुस्तक 'सुमित्रनंदन पंत' प्रकाशित होने पर उसकी समीक्षा भी 'रूपाभ' के अंक में प्रकाशित हुई थी जिसके अंत में लेखक का नाम न देकर केवल श लिखा हुआ था। यह सूचना मुझे बच्चन जी ने दी था और मैं बड़ी उत्सुक्ता से 'रूपाभ' का वह अंक देखने के लिए प्रतीक्षा करने लगा। समीक्षा कुल मिलाकर अनुकूल नहीं थी क्योंकि उसमें पुस्तक के गुण-दोषों के विवेचन की अपेक्षा पंत जी के काव्य के विषय में समीक्षाकार के अपने दृष्टिकोण का प्रकाशन और उसके अनुसार पुस्तक के अभावों का उल्लेख ही अधिक था। मेरी निराशा के दो विशेष कारण थे : एक तो यह कि जब मैंने पंत जी से मिलने से पहले नरेंद्र जी को पुस्तक के कुछ अंश सुनाए थे तो उनकी प्रतिक्रियाएं प्रायः प्रशंसात्मक ही थीं। दूसरा कारण यह था कि उस समय तक हिंदी के शांतिप्रिय द्विवेदी आदि कुछ एक प्रतिष्ठित समीक्षकों और स्वयं आचार्य शुक्ल की अनुशंसा इसे प्राप्त हो चुका थी। इस प्रसंग की चर्चा मैंने एक-दो मित्रों से की, जो कालांतर में नरेंद्र जी तक पहुँच गयी और तुरंत ही

उन्होंने मुझे पत्र लिखकर स्पष्ट किया कि समीक्षा के अंत में मुद्रित 'श' शमशेर जी के नाम का प्रथम अक्षर था, शर्मा का संक्षिप्त रूप नहीं था। उस समय तक शमशेर जी से मेरा परिचय नहीं था। बाद में जब उनसे मुलाकात हुई तो एक विशेष प्रकार के लचक-पचक व्यवहार और उसकी व्यंजक मुद्राओं को देखकर लेखक की चिंतन-प्रक्रिया को समझने में मुझे कठिनाई नहीं हुई। नरेंद्र जी इस समय पूरी संलग्नता के साथ साहित्य-साधना में लगे हुए थे और 'रूपाभ' के अतिरिक्त 'हंस' आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएं प्रकाशित हो रही थीं।

सन् 1940 तक नरेंद्र जी केवल विचारों में ही नहीं कर्म के क्षेत्र में भी राजनीति में अग्रसर हो गये थे। अतः 1942 के आंदोलन में उन्हें देवली कैम्प में रहना पड़ा – बाद में कुछ समय तक खुर्जा में रहने का प्रतिबंध लगा दिया गया। देश स्वतंत्र होने पर जब राजर्षि टंडन के सत्प्रयत्न से राजकीय संस्थाओं में हिंदी का प्रवेश-प्रचार होने लगा तो नरेंद्र जी की नियुक्ति बंबई के आकाशवाणी केंद्र में हिंदी सलाहकार के रूप में हो गयी और वे अनेक वर्ष तक दिल्ली तथा बंबई केंद्रों में 'विविध भारती' आदि कार्यक्रमों का कुशलतापूर्वक निर्देशन करते रहे। उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिए कुछ वर्ष पूर्व उन्हें आकाशवाणी की ओर से सम्मानीय संचालक के पद पर अधिष्ठित किया गया था।

वर्तमान शती के मध्य दशक में दिल्ली हिंदी के साहित्यकारों का केंद्र बन गया था। संसद में थे मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, दिनकर और बनारसीदास चतुर्वेदी। रेडियो में श्री नारायण चतुर्वेदी, बालकृष्ण राव, भगवतीचरण वर्मा, नरेंद्र शर्मा, (गिरिजाकुमार माथुर उस समय इलाहाबाद में थे)। बच्चन विदेश मंत्रालय में थे और अज्ञेय स्वतंत्र रूप से लेखन-संपादन कार्य में संलग्न थे। स्थायी निवासियों में प्रमुख थे जैनेंद्र कुमार – चतुरसेन जी दूर रहने के कारण इस वृत्त से प्रायः अलग ही थे और वियोगी हरि साहित्य से उपराम ले चुके थे।

नरेंद्र शर्मा से दद्दा के आवास पर सप्ताह में कम से कम दो-तीन बार भेंट अवश्य हो जाती थी। समवयस्क होने के कारण उनके साथ मेरा व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक मुक्त-मुखर था। दद्दा के चिरगांव चले जाने पर भी हम दोनों की भेंट महीने में कई बार हो जाती थी। रेडियो स्टेशन पर तो मिलते ही थे -- उसके अतिरिक्त वे कभी मेरे घर पर भी आ जाते थे और मैं उनके आवास पर चला जाता था।

नरेंद्र जी सद्गृहस्थ व्यक्ति थे। गृहस्थ के वातावरण में मेरी बेटियों, मां और पत्नी के साथ उन्हीं के स्तर पर घुलमिलकर बातचीत करने में उन्हें बड़ा आनंद आता था। एक बार किसी बच्चे को डांट दिया तो उन्होंने दद्दा से मेरी शिकायत की और बोले 'अगर मैं ऐसा व्यवहार अपने बच्चों से करूं तो वे मुझसे बोलें भी नहीं!' एक दिन मेरी मां को जब यह मालूम हुआ कि नरेंद्र बड़े अच्छे ज्योतिषी हैं तो उसने मेरी जन्म-कुंडली उनके सामने रख दी। अपने मन की बात तो उसने नहीं कही – (वास्तव में वह अपने परिवार में पुत्र के अभाव के कारण चिंतित थी) लेकिन अत्यंत जिज्ञासु भाव से उनकी ओर देखने लगी। चतुर ज्योतिषी के समान नरेंद्र उसका मंतव्य समझ गये और ध्यान से कुंडली की परीक्षा करने के बाद कहने लगे : "यह जो तुम बढ़ते चले जा रहे हो, यह बुलंदशहर की गौड़ कन्या का ही प्रताप है।

नगेंद्र जी स्वयं बुलंदशहर जिले के रहने वाले गौड़ ब्राह्मण थे। फिर मेरी माँ से बोले 'माता जी बड़ी ही शुभ कुंडली है। भगवान सब प्रकार अनुग्रह करेंगे।"

नगेंद्र जी की व्यवहार-बुद्धि बड़ी प्रखर थी। किंतु वे उसका उपयोग अत्यंत सावधानी से करते थे जिससे व्यवहार में फूहड़पन कभी नहीं आता था। 'विविध भारती' के निदेशक के रूप में वे रेडियो के अर्ध सरकारी तंत्र के सर्वोच्च पद पर पहुँच गये थे जो उचित ही था। किंतु उसके लिए उन्होंने कम से कम जाहिर तौर पर, दौड़-धूप या चाल-फेर नहीं की। अपने कुछ-एक सहयोगियों की तरह न तो उन्होंने मंत्रियों के आस-पास चक्कर काटे और न श्रीमंतों की मर्ज़ीदारी ही की। आकाशवाणी के महानिदेशक श्री जगदीश चंद्र माथुर के साथ उनका खुर्जा से ही पुराना संबंध था जो आयु में उनसे छोटे थे। लेकिन इस नैकट्य का प्रचार करना तो क्या उसका एहसास भी बहुत कम लोगों को होने दिया। इस प्रकार के प्रसंगों में, जैसा कि उनके एक अंतरंग मित्र ने कहा था उनका आपरेशन बड़ा 'नीट' होता था। व्यवहार-बुद्धि का दूसरा प्रमाण यह था कि वे विरुद्धों के साथ बिना किसी कूट व्यवहार के संगति बैठा लेते थे। दिनकर भी उनके मित्र थे और भगवती बाबू व जगदीश चंद्र माथुर भी। कब किसके साथ कितनी दूर तक जाना है, इसकी पहचान उन्हें बड़ी साफ थी और नाजुक मामलों को अत्यंत सतर्कता के साथ गोपनीय रखने की कला में वे पारंगत थे। हमारे ही वृत्त की एक महिला की दद्दा के परिवार के एक प्रौढ़ विधुर के साथ विवाह-वार्ता की, जिसमें उन्होंने अत्यंत सक्रिय भूमिका अदा की थी, किसी को आखिर तक गुमान नहीं होने दिया।

पंत जी की तरह नगेंद्र जी की विचारधारा में अंत तक विकास होता रहा। आरंभ में उनका दृष्टिकोण रूमानी था, फिर कम से कम दो दशकों तक मार्क्सवादी रहा और अंत में दार्शनिक-आध्यात्मिक हो गया।

सुकुमार कल्पनाशील कवि नगेंद्र के जीवन का पर्यवसान भारतीय संस्कृति और अध्यात्म विद्या के प्रवक्ता पं. नगेंद्र शर्मा के रूप में हुआ।

छायावाद के बाद चार कवि प्रमुख रूप से उभर कर सामने आये थे : बच्चन, दिनकर, नगेंद्र और अंचल। बच्चन की काव्यसंवेदना छायावाद के प्रभाव से प्रायः अछूती थी। दिनकर के कंठ में क्रांति का आक्रोश और मन में प्रणय की मिठास थी और, ये दोनों तत्व बारी-बारी से उनकी रचनाओं में मुखर हो उठते थे। नगेंद्र में इन दोनों से भिन्न विशेष प्रकार की सहज कोमलता थी जो श्रोता के मन को उद्वेलित न कर पुलकित कर देती थी। उनकी कविताएं पढ़कर मुझे गीति-कवि मतिराम का स्मरण हो आता था।

नगेंद्र जी का पहला काव्य-संग्रह था 'शूल-फूल' जो 1935-36 के आस-पास प्रकाशित हुआ था। उसमें छायावाद की रमणीय भाव-कल्पनाओं की अभिव्यक्ति अधिक थी किंतु पंत जी की स्नेह-छाया में रहकर भी इन आरंभिक कविताओं में कवि ने अपनी अलग पहचान बना ली थी – स्निग्ध-कोमल अनुभूतियों की सुरव-सरल अभिव्यक्ति। 'शूल-फूल' के शुरू में पं. अमरनाथ झा की भूमिका थी।

'शूल-फूल' के बाद उनके कई संग्रह प्रकाशित हुए : 'प्रवासी के गीत', 'प्रभात-फेरी', 'पलाश वन', 'हंसमाला' आदि। इनमें 'प्रवासी के गीत' का काव्य-मर्मज्ञों ने मुक्तकंठ से

स्वागत किया। इसका एक गीत 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे ?' अत्यंत लोकप्रिय हुआ। कवि-गोष्ठियों और कवि-सम्मेलनों में श्रोता-समाज बार-बार उसकी मांग करता रहा।

नरेंद्र जी के काव्य के तीन-चार प्रमुख विषय हैं : प्रकृति-सौंदर्य, प्रणय-संयोग-वियोग, राष्ट्रीय-सामाजिक भावना और बाद में अध्यात्म-दर्शन में भी इनकी गहरी रुचि हो गयी थी। प्रकृति सौंदर्य के चित्र उनके सभी काव्य-संग्रहों में राशि-राशि बिखरे पड़े हैं। इन चित्रों में कल्पना-विलास नहीं वरन् यथार्थ अनुभूति की ताजगी है :-

कटहल, बेल, नीम महके हैं खिली कामिनी फूलों वाली
रंगी खड़ी सेमल, पलाश औ' अमलतास की डाली-डाली।
सोने की गुलमोर लोचनों में छा जाती होगी। गंध-रूप-रंग की यह दुनिया
जो अग-जग फल-फूल रही है, झूल झकोरों में माधव के
सब पिछले दुख भूल रही है, आज लगे बैसाख नई अँबिया गदराती होगी।

प्रणय और उसके उभय रूप संयोग-वियोग उनकी कविता के केंद्रीय विषय हैं। तरल-सघन अनुभूतियों से स्पंदित संयोग-वियोग के उद्गीथ उनकी संवेदना के मूल आधार हैं : 'शूल-फूल', 'पलाश वन', 'हंसमाला' आदि सभी ग्रंथ प्रणय की उष्ण गंध से सुवासित हैं। 'प्रवासी के गीत' तो प्रणय-गीतों का संकलन है ही, 'कामिनी' शीर्षक खण्ड काव्य में यह ऊष्मा और भी सघन हो गयी है। 'प्रभात फेरी' और 'हंसमाला' की अनेक रचनाओं में राष्ट्रीय सामाजिक भावना की प्राणमयी अभिव्यक्ति मिलती है। 'रक्त चंदन' महात्मा गांधी के बलिदान से प्रेरित कविताओं का संकलन है, जिनमें करुणा, श्रद्धा और ओज का मार्मिक समन्वय है। 'द्रौपदी' कवि के अध्यात्म भाव की रूपकात्मक अभिव्यक्ति है।

नरेंद्र जी ने कहानी और निबंध भी लिखे हैं किंतु उनकी कारयित्री प्रतिभा की आत्मीय भूमि कविता ही है – और कविता के वृत्त में भी उनकी संवेदना का प्रमुख माध्यम है गीत। हिंदी के गीतकारों में वे अग्रणी हैं। मध्यवर्गीय जीवन के परिचित परिवेश में अंकित मिलन-विरह के ये गीत अपनी सहज आत्मीय भाव-भंगिमाओं के कारण सहृदय-समाज में सदा ही लोकप्रिय रहेंगे। नरेंद्र का सौम्य मधुर व्यक्तित्व आज नहीं है, किंतु उसकी भीनी गंध मुझ जैसे अनेक मित्रों के मन में आज भी यथावत् महक रही है :

"तुम्हें याद है क्या उस दिन की नये कोट के बटन-होल में,
हँस कर, प्रिये, लगा दी थी जब वह गुलाब की लाल कली।

फिर कुछ शरमा कर, साहस कर, बोली थीं तुम 'इसको यों ही
खेल समझ कर फेंक न देना, है यह प्रेम-भेंट पहली।

कुसुम-कली वह कब की सूखी, फटा ट्वीड का नया कोट भी
किंतु बसी है सुरभि हृदय में जो उस कलिका से निकली।

□

निशीथ के अंधेरे में एक चमकता तारा उमाशंकर जोशी

प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी

साहित्य अकादेमी के भूतपूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादेमी तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता, साहित्य अकादेमी के महत्तर सदस्य श्री उमाशंकर जोशी (1911-1988) सही मायने में भारतीय लेखक थे। अपने आपको वे 'गुजराती में लिखनेवाला एक भारतीय साहित्यकार' कहते थे। उनका कहना था कि भारतवर्ष की किसी भी भाषा में लिखित साहित्य की समीक्षा करते हुए हमारे लिए क्षेत्रीय संकीर्णता से परे, एक सार्वदेशिक भाव-बोध का सहारा लेना ज़रूरी है। किसी साहित्यिक कृति की महत्ता को केवल अपनी भाषा की दृष्टि से नहीं ; अपितु भारतीय साहित्य के व्यापक परिदृश्य में आँकना चाहिए। सन् 1958 में 'आधुनिकता और भारतीय साहित्य' पर लिखते हुए उन्होंने कहा था, "एक सवाल, जो मैं कई-कई बार स्वयं अपने आप से पूछता रहा हूँ कि जहाँ भारतीय संगीत और भारतीय नृत्य अब भी अपनी ज़मीन यानी देसी पद्धति या चाल से जुड़े रहने के लिए जागरूक हैं, वहाँ समकालीन भारतीय साहित्य के पास ऐसा कुछ नहीं है जो यूरोपीय पैटर्न से अलग हो। जापानी **हाइकू** या **तनका** जैसा भी कुछ नहीं - जिसने कि पश्चिम के प्रभाव से मुक्त रहकर अपना अस्तित्व कमोवेश, बनाये रखा हो। .... रवींद्रनाथ, शरच्चंद्र और प्रेमचंद की कृतियां वृहत्तर विश्व साहित्य का अंग इसलिए बन सकी हैं कि इन्होंने मुख्य रूप से संपूर्ण भारत का ध्यान आकृष्ट किया था, उनके साहित्य में भारतीयता की आधिकारिक मुहर लगी हुई थी।"

भारतीयता या विशिष्टता के सहारे ही कोई लेखक वैश्विक बन पाता है। उमाशंकर भाई सोचते थे कि लेखक की जड़ें उसकी ज़मीन में पक्की जमी रहनी चाहिए तभी वह विश्व के दरबार में अपना स्थान बना पाता है। भारत की तलाश ही उन्हें दुनिया का पता दे सकती है। इसीलिए आधुनिक भारतीय उपन्यासकारों की भारत की तलाश का विश्लेषण करते हुए उन्होंने कहा था कि तलाश की यह दृष्टि जैसे-जैसे प्रौढ़ होती जाती है, वैसे-वैसे वह अपने परिवेश के माध्यम से मानव-नियति को देखना सीख जाती है। भारतीय उपन्यास विश्व साहित्य के वृहत्तर रूपाकार में अपने को तभी ढाल पाता है जब कि वह उन सर्जकों के हाथों लिखा जाता है जिनकी जड़ें ज़मीन में हैं। पहले हमारे साहित्यकारों को भारतीय बनना होगा। हमारे बीच ऐसे साहित्यकार उपस्थित हों जिनके पास अन्यान्य भाषाओं का अंतरंग ज्ञान हो तभी भारतीय साहित्य के निर्माण में अपेक्षित सहयोग कर वे लेखक हमारे साहित्य को विश्व साहित्य का महत्वपूर्ण अवयव बना सकेंगे। उमाशंकर भाई की यह सर्वभारतीय दृष्टि उन्हें विश्व दृष्टि दे पायी थी। इस दृष्टि का पहला परिचय उनकी पहली कृति 'विश्वशांति' (1931) है जिसकी रचना बीस वर्ष की उम्र में की गई थी। उस समय सारा विश्व पहले महायुद्ध के बाद की भयानक मंदी में से गुज़र रहा था। विदेशी गुलामी हमारे गले का फंदा बन चुकी थी।

राष्ट्रीयता के खिलाफ़ बोलकर रवींद्रनाथ ठाकुर जापान और अमरीका में बदनाम हो गए थे। ऐसे समय वह बीस साल का युवा कवि लिख रहा था :

मिटाकर व्यक्ति बनूँ विश्व मानव:
सर पर धारण करूं वसुंधरा की धूल

यह भारतीय अस्मिता की पहचान है - अपनी छोटी-सी दुनिया से मुक्त होकर विश्व दरबार तक पहुँचना है। यह विश्व-मानवतावाद भारतीय साहित्य की मूलभूत धारा है और इसी धारा में सिक्त उनका सारा रचना संसार है। यह बात सही है कि सन् 1930 से सत्याग्रह की लड़ाई शुरू हो चुकी थी। उमाशंकर भाई का कहना है कि उस समय हृदय-चित्त पर राष्ट्रीयता की भावना ने अधिकार कर लिया था परंतु राष्ट्रीय लड़ाई के नेपथ्य में किसी व्यापक भावना का आकर्षण भी था। अपने को सारे विश्व में बाँट देने का अनुभव – विश्व से, मानवजाति से, राष्ट्र से तादात्म्य का अनुभव। **यायावर का गीत** में उन्होंने लिखा :

हे मां, मत खोजना अपने बालक को खो गया है वह
इस धरती के आँगन में। खंड खंड में लोकवृंद एक साथ
उमड़ आए हैं। और लगा है मनुष्यों का यह मेला।
मत खोजना धरती की विशाल गोद में मैं जो मिल
जाऊँगा सबके साथ। हे मां, मैं तो खो गया हूँ
धरती के आँगन में।

हालाँकि राष्ट्रीयता उन्हें गांधी-दर्शन के निकट ले गई थी जिसकी अभिव्यक्ति समय-समय पर उनके काव्य ग्रंथों में दिखाई पड़ जाती है। **विश्वशांति**में उल्लेख है कि कवि-दृष्टि की शांति केवल अहिंसा के मार्ग से ही प्राप्त हो सकती है और आगे के काव्यों में भी यही बात स्पष्टता के साथ परिभाषित हुई है। सन् 1934 में प्रकाशित 'गंगोत्री' काव्य संग्रह में भी यह स्वर मुखरित है। उमाशंकर जोशी गुजराती साहित्य के गांधी युग (1915-1947) के कवि के रूप में उभर कर सामने आये थे। गांधी जी की प्रेरणा से उस समय के कवियों ने जन-मानस के आंतरिक रूप को स्पर्श करनेवाली कविताएँ लिखी, स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी हुई राष्ट्रीयता के स्वर को बल दिया, गाँव के लोगों के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति की, दलितों और स्त्रियों की यथार्थ स्थिति को आँका और पंडित युग की संस्कृत निष्ठ भाषा से अलग एक नयी शैली को जन्म दिया। उनके काव्य-संग्रह में जीवन का ज्वार तथा युग की ध्वनि सुनाई पड़ती है। सन् 1939 में उनका **निशीथ** काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुआ। महान् कवि किस प्रकार 'कॉस्मिक मेटाफर' का इस्तेमाल करते हुए अपने विशाल तथा उदात्त रूप का परिचय देते हैं उसी का उदाहरण **निशीथ** है :

प्रतिक्षण घूमती इस पृथ्वी की पीठ पर पाँव रखकर छटा से। ले रहा ताली
तू दूरवर्ती तारकों के साथ। फैलाकर दोनों भुजाएँ ब्रह्मांड के गोलार्धों में
हिल्लोल ले रहा है घूमती हुई धारा के संग

अनुमान लगाया जा सकता है कि निशीथरात्रि में आकाश में भरे हुए तारों के साथ आप बातें कर रहे हैं। चारों ओर निशीथ की स्तब्धता और वह स्तब्धता फासले को कम कर देती है - और फिर आप और आप नहीं रहते। सीमा से युक्त आप एक असीम रूप धारण कर लेते हैं। आपको अचानक एहसास होता है कि आप विराट हैं। कदाचित् वे इस शताब्दी की गुजराती कविता के सबसे बड़े स्रष्टा थे। **निशीथ** उसका परिचायक है। एक प्रमुख गुजराती समालोचक के अनुसार **निशीथ** इस शताब्दी के तीसरे दशक की उत्कंठा और आदर्श का प्रतिरूप है, भारी बेचैनी और गहरी पीड़ा से भरे ये वर्ष आकांक्षा और महत्त्वाकांक्षा के भी वर्ष रहे। इस कृति में कवि के द्वारा इस संसार को देखने, परखने और चाहने के संघर्ष को लक्ष्य किया जा सकता है। कवि ने स्वयं निशीथ की कविताओं के बारे में कहा है कि इनमें मानव-नियति के सांस्कृतिक रूपों की खोज है, वैश्विक चित्रण और इतिहासप्रेम की अभिव्यक्ति है। प्रणय की अपरीक्षित, अनुभूत यद्यपि विश्वस्त अभिव्यंजना है। मृत्यु विषयक संवेदना भी प्रकट हुई है। जीवन की वास्तविकताओं की अभिव्यक्ति है, जिनमें केवल विषमताओं के ही नहीं, किंतु जगत-जीवन के विशाल फलक पर, दृष्टि की व्याप्ति से बाहर रह गई, निपट वस्तुस्थितियों के कुछ अंश अनुभूति-विषय बन पाये हैं। और इनके साथ व्यक्ति की अशांति भी विषय-वस्तु बनती है। कवि ने इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है:

'विश्वशांति और वैयक्तिक अशांति विरोधी वस्तुएँ नहीं रह जाती। दोनों यथार्थ के सेतु से जुड़ जाती हैं। सॉनिट माला के अंतभाग में एक प्रकार के संशयवाद, निराशावाद, शून्यवाद, स्वप्न-आदर्श-भावना विषयक पराजयवाद और आगे चलकर हमें पाश्चात्य साहित्य द्वारा दिखाये गए निःसारवाद अस्तित्ववाद के इंगित है, किंतु परिणामस्वरूप उबर आती है एक प्रकार की कोई आध्यात्मिक अनुभूति। व्यक्ति दबता, झेलता, सीझता, मंज कर बाहर आता है यथार्थ का स्वागत करते, उसे अपनाते हुए। मुक्त हृदय से, मुक्त चित्त से यथार्थ का निःशेष स्वीकार भी स्वतः एक आध्यात्मिक विजय की भूमिका है।'

भारतीयता की खोज कवि को विश्व का परिचय देती है और वही अंततः उन्हें फिर वापिस भारतीयता की केंद्रीय अनुभूति आध्यात्मिकता का एहसास कराती है। अभिज्ञा (1967) काव्यग्रंथ में संकलित उनकी कविता **छिन्न-भिन्न हूँ** में मनुष्य 'एक-केंद्र' हो पाया है ऐसा कहा जा सकता है। कवि ने स्वयं कहा है कि साहित्य का माध्यम शब्द है। बाह्य वास्तविकता को शब्द एकत्व अर्पित करता है, इस अर्थ में कला स्वयं एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। आज का मुख्य प्रश्न यह है कि यंत्र संस्कृति में मनुष्य जीए कैसे ? केवल जीए नहीं बल्कि मानवीय गरिमा के साथ जीए। यंत्र-वैज्ञानिक संस्कृति का पश्चिमी जीवन पर भारी दबाव है और हमारे जीवन पर भी उसका असर न पड़ना असंभव है। पश्चिम में भी उसका असर न पड़ना असंभव है। पश्चिम में भी विज्ञान और टेक्नॉलॉजी की उपलब्धियों के असंतोष के बीच धर्म की - एक प्रकार की आध्यात्मिकता की खोज के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। किंतु धर्म का मार्ग विज्ञान के सत्यों के बीच से ही गुजरता है। **डिवाइन कॉमेडी में इनफरनो**

(नरक) और परगेटोरियो (शोधनागार) से होकर पेरेडिसो (स्वर्ग) का रास्ता गुज़रा है। हमारे देश में भी ऐसे लोग हो सकते हैं जो इन अनुभवों की आँच में पक रहे हों। उमाशंकर भाई के लिए कविता केंद्र तक पहुँचने की यात्रा है। आत्मा को पहचानना है। मगर यह रास्ता वैज्ञानिक यथार्थ के बीच से गुजरता है। हमारी यात्रा यदि इस यथार्थ में सिमट के रह गई तो उससे हमारे चैतन्य पर आघात पहुँचता है। हमें तब चारों ओर मृत्यु दिखाई पड़ती है, कहीं कोई आशा की चमक कौंधती नहीं। एक शिथिलता हमें घेर लेती है। इससे उबरने के लिए तब कवि रुद्र का आह्वान करता है :

मुझे मुर्दों की बू सताती है।
भले ही फूलों से ढंके रूप में विहरते हों
शव विचरते हैं समाज के शिखर से शिखर पर
जंगलों में काठ की तो कमी नहीं है,
कुर्सियां बनती जाती हैं कितनी ही अनगिनत, बाग में फूल भी खिलते जाते हैं
और गले के श्रृंगार बनते जाते हैं, अचेतन की आरती में
चेतना की आहुति दी जाती है, हे शिव, हे रुद्र! उठो सद्य

रुद्र का यह आह्वान एक भावात्मक जीवन को पाने की चाह है, जीवन के सर्जनात्मक सिद्धांत की खोज है। प्रकृति का सौंदर्य और जीवन का प्रेम तब और अलग नहीं दिखाई पडता और तब **दीक्षा** की पंक्तियों के अनुसार कोई किसी पंछी से मुलाकात पक्की कर देता है मेरी, बिना पूछे मुझसे, किसी बाड़े के पास। . . . . गली के उस नन्हें बालक को मेरी ओर खिलखिला कर हँसा देता है, अयुत वर्षों के बाद प्रकट मानव की आज तक की सारी यात्रा की भावी आकांक्षा की पताका फहरा देता है, उस नाजुक कलहास्य में विजय के साथ। दरअसल आज की संपूर्ण विघटित स्थिति में भी हमारी जातीय अवचेतना में छिपे कतिपय आद्यप्रारूपों का ही संकेत देती है **दीक्षा**। उमाशंकर भाई जीवन को उसकी संपूर्णता में पाना चाहते थे इसीलिए उनकी कविता अंततः मनुष्य और उसके आशायुक्त जीवन के प्रति प्रतिबद्ध है।

पिछले साल 14 नवंबर को साहित्य अकादेमी की ओर से जवाहरलाल नेहरू की जन्म शत-वार्षिकी के अवसर पर राष्ट्रीय स्तर पर एक कवि-पर्व का आयोजन किया गया था। उमाशंकर जोशी ने उसमें भाग लिया था। उस समय उनकी तबीयत बहुत अच्छी नहीं थी। डाक्टरों ने ऑपरेशन की बात कही थी। मैंने पूछा नहीं कौन-सा ऑपरेशन। डर लग रहा था। मगर अंदाजा कर सकता था कि कोई एक चिंता उन्हें सता रही है। फिर भी उत्साह में कोई कमी नहीं थी। मुझे भाग लेने वाले दूसरे कवियों के बारे में पूछा। कौन हिंदी अनुवाद पढ़ेगा वे सारे प्रश्न। उस दिन शाम को उन्होंने चार कविताएँ सुनायी थीं। 'एक बच्ची की मौत पर' उसकी हमजोली सखी का रोना। पहले तो सखी ने सोचा था कि सोते रहने का यह खेल पहले कभी नहीं खेला गया। बड़ा अजब खेल है यह। मगर उस खेल में वह सखी भाग नहीं ले सकी। सोते हुए को लेकर लोग चले गए। उस पर उसका रोना और "रोना नहीं था मुझे, फिर भी आ गयी रूलाई।" दूसरी कविता एक सूखे पेड़ को लेकर थी जो उनके दरवाज़े के सामने सूख रहा था। 'शाखा बाहुओं के बीच इसने सीने से लगाा रखा है। मानो कोई मृत्युफल'। तीसरी

कविता में भी वेदना का ही स्वर फूट रहा था। मरमट की सीढ़ियाँ, फव्वारा यह सब ठीक है मगर यदि किसी का चेहरा मरमट का हो तो ? चौथी कविता मृत्युभय, वेदना, शोक, व्यथा सबको पार कर एक वृहत्तर फलक पर मानव की आशा से जुड़ी नियति का एहसास कराती है।

विश्व पर विश्व मेरे आर-पार गुजरते हैं
भ्रमती पृथ्वी पर मैं मिट्टी की श्रृंखला से बंधा।
एक दूसरे के आस-पास चकराते नक्षत्र और नीहारिकाएं,
आकाशगंगाएं नक्षत्रों के घन - चले आते। हरिणी मेरे
भीतर कूदी,
पीछे व्याध, लंबा-सा बिच्छू ......
अवकाश सारा पीता रहूँ, प्यासा मैं झंझा का तांडव
गुराते बादल, घुमराती बिजली, गर्मियों की लू, वासंती परिमल - भीतर रहा कोई यह सारा गटगटाता।
अनंत की करूणा का अश्रुकण ? कोई टूटता तारा,
धरित्री की द्युति-अभीप्सा ? - कोई झिलमिलाता जुगनू -
स्मृति के संपुट में इतनी-सी आशा संभल जाए।
विश्व पर विश्व मेरे आर-पार गुज़रते रहे।

हालांकि आशा का यह स्वर मन को बहुत ज़्यादा आश्वस्त नहीं करता। शायद इसीलिए कार्यक्रम के बाद मैंने पूछा था आपने ऐसी कविताएँ क्यों लिखीं। आपकी भारतीयता पर कहीं-न-कहीं अस्तित्ववाद की छाया गहरा रही है। यह सुनकर उमाशंकर भाई हँस पड़े थे। फिर रवींद्रनाथ ठाकुर को उद्धृत करते हुए कहा था, "रवींद्र की वे पंक्तियाँ याद हैं न, मरणरे तुहुँ मम श्याम समान। मरण को इस देश ने कभी भी डर की नजरों से नहीं देखा। शाखा बाहुओं के बीच उसने मृत्युफल को कितने प्यार और यत्न से सीने से लगा रखा है। क्या इसे तुम डर कहोगे। क्या यह मृत्यु पर विजय की घोषणा नहीं है ?" आज इस लेख को लिखते हुए मुझे उनकी यह बात बार-बार याद आ रही है। वेदों में कहा गया है, 'यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः,' वही अमृत है और वही मृत्यु है। उमाशंकर भाई इसे ही दोहरा गए थे उस दिन, हँसते हुए। एक छोटे से फ्रेमवाले उस आदमी ने अपने विराट रूप से उस दिन मेरा परिचय कराया था। मैंने टैक्सी बुलवायी - फिर एक दफ़ा मुस्करा के वे चले गए। रवींद्र भवन के गेट के पास मैं अकेला रह गया - ऊपर देखा तो आसमान में सिर्फ तारे ही तारे दिखाई पड़े - चमकते हुए और साथ में हँसते हुए भी। □

विज्ञान

ब्रह्मांड में जीवन की तलाश

गुणाकर मुले

क्या केवल हमारी धरती पर ही जीवन का अस्तित्व है ? क्या विशाल विश्व के अन्य अनेक पिंडों पर जीव-जगत का होना संभव नहीं हैं ? क्या यह संभव है कि एक बहुत बड़े खेत में केवल एक ही पौधा पनपे ? क्या दिक्काल के इतने लंबे-चौड़े विस्तार में केवल हमारी नन्हीं धरती पर ही जीवन के उद्भव और विकास के लिए अनुकूल भौतिक परिस्थितियां उपलब्ध हुई हैं ? क्या ब्रह्मांड के अन्य अनेक पिंडों पर हमसे भी अधिक उन्नत सभ्यताओं का अस्तित्व संभव नहीं है ?

ये सवाल नये नहीं हैं। प्राचीन काल से ही अनेक देशों के विचारक इन सवालों के बारे में सोचते आये हैं। भारतीय आख्यानों में द्युलोक, अंतरिक्षलोक, गंधर्वलोक आदि के उल्लेख बार-बार आये हैं। समूचा भारतीय चिंतन इस मान्यता पर आधारित रहा है कि कालचक्र निरंतर घूमता रहता है, यह विश्व अनादि-अनंत है और इसमें अनेकानेक लोकों का अस्तित्व है। भारतीय विचारकों या धर्मों ने लोकों (जीव-जगतों) की विविधता का कभी कोई विरोध नहीं किया।

अफलातून और अरस्तू-जैसे यूनानी विचारकों ने भी विश्व में जीवन की विविधता को स्वीकार किया था, मगर उनकी मान्यता थी कि धरती का मानव ही इस विश्व की सर्वोत्तम सृष्टि है।

ईसाई धर्म की भी यही मान्यता रही कि विश्व में धरती और मानव की स्थिति अद्वितीय है। ईसाई धर्म के अनुसार, ईश्वर ने ईसा के रूप में केवल इसी धरती पर एक उद्धारक (सेवियर) भेजा है। यदि विश्व में दूसरे जीव-जगतों का अस्तित्व होता, तो उन्हें भी उद्धारकों की आवश्यकता पड़ती। इसी स्थिति को स्पष्ट करते हुए **सेंट अगस्टाइन** (ईसा की पांचवीं सदी) ने कहा था – ईसा मसीह ही एकमात्र उद्धारक हैं। इसलिए इस धरती के अलावा अन्यत्र कहीं भी किसी जीव-जगत का अस्तित्व संभव नहीं।

प्राचीन यूरोप में यह मान्यता भी प्रचलित रही कि समूचे विश्व का सृजन मूलतः केवल मानव के लिए हुआ है। कुछ धार्मिक विचारक यह भी दलील देते रहे कि ठीक हमारे जैसे ही जगतों की सृष्टि करते जाने में ईश्वर की कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। उसी प्रकार, भिन्न-भिन्न किस्म के जगतों की सृष्टि करने में भी ईश्वर की कोई दिलचस्पी नहीं हो सकती। ईसाई धर्म, न केवल पृथ्वी केंद्रवादी, बल्कि मानव केंद्रवादी भी बना रहा।

लेकिन **कोपर्निकस** (1473-1543) ने जब सिद्ध किया कि हमारी पृथ्वी सौर-मंडल का केंद्रीय पिंड नहीं है, तो धार्मिक मान्यताओं को जबरदस्त धक्का पहुंचा। इटली के खगोलविद **ज्यार्दानो ब्रूनो** (1547-1600) ने यूरोप के नगरों में घूम-घूमकर प्रचार किया कि ब्रह्मांड में हमारे सूर्य-जैसे अनगिनत सूर्य हैं और हमारी पृथ्वी-जैसे अनगिनत आबाद ग्रह हैं। ब्रूनो को इसकी कीमत भी चुकानी पड़ी। ईसाई धर्मांधों ने उसे खूंटे से बांधकर जिंदा जला दिया!

फिर भी, कोपर्निकस के सूर्यकेंद्रवादी सिद्धांत और दूरबीन की खोज (1609 ई.) ने विश्व के अनेकानेक पिंडों पर जीवन के अस्तित्व की संभावना को काफी बल प्रदान किया। दूसरी ओर, गैलीलियो की दूरबीन से यह भी स्पष्ट हुआ कि चंद्र पर हवा नहीं, पानी नहीं, यह चंद्र एक निर्जीव पिंड है। आगे जाकर यह भी पता चला कि सौर-मंडल के कई ग्रहों पर जीव-जगत के अस्तित्व के लिए अनुकूल भौतिक परिस्थितियां नहीं हैं।

यह बड़ी निराशाजनक स्थिति थी। मगर अनेक वैज्ञानिक मानते रहे कि पृथ्वी और मंगल में अनेक बातें समान हैं, इसलिए मंगल पर जीवन का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। महान जर्मन गणितज्ञ **कार्ल फ्रेडरिक गौस** (1777-1855) ने मंगल के बुद्धिमान प्राणियों के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए एक अनोखी योजना भी प्रस्तुत की थी। गौस ने सोचा कि मंगलवासी यदि सचमुच बुद्धिमान हैं तो वे "पाइथेगोरस का प्रमेय" अवश्य जानते होंगे। इसलिए उन्होंने सुझाया कि साइबेरिया के टाइगा प्रदेश में हमें पाइथेगोरस के प्रमेय की एक विशाल आकृति खोदनी चाहिए।

मंगल के अनुसंधान के इतिहास में 1877 ई. का साल बड़े महत्व का है। उस साल मंगल के दो नन्हे चंद्रों – फोबोस और देइमोस – की खोज हुई। उसी साल इतालवी खगोलविद **जिओवान्नी शियापारेली** ने दूरबीन से देखा कि मंगल की सतह पर सीधी रेखाओं का एक जाल-सा बिछा हुआ है। शियापारेली ने उन काली सीधी रेखाओं को इतालवी भाषा में **कनाली** (पानी की संकरी नालियां) नाम दिया। मगर अंग्रेजी में अनूदित होकर यह 'कनाली' शब्द 'कैनल्स' अर्थात् मानव-निर्मित नहरों का द्योतक बन गया। तब से मंगल की इन नहरों को वास्तविक माना जाने लगा। न केवल खगोलविदों की, अपितु, आम लोगों की भी यह धारणा बनती गई कि मंगल ग्रह बुद्धिमान प्राणियों से आबाद है।

अमेरिकी खगोलविद **परसिवल लोवेल** ने बुद्धिमान मंगलवासियों की धारणा का सबसे अधिक प्रचार किया। उन्होंने मंगल के अध्ययन के लिए अरिजोना के फ्लैगस्टाफ स्थान पर एक नई वेधशाला स्थापित की। कई साल तक मंगल का अन्वेषण करने के बाद 1908 ई. में **मंगल: जीवन का धारक** नामक एक ग्रंथ लिखा और उसमें उन्होंने मंगल पर बुद्धिमान प्राणियों के अस्तित्व का जबरदस्त प्रतिपादन किया।

मंगल पर बुद्धिमान प्राणियों के निवास की मान्यता को लोवेल से भी अधिक प्रचारित किया वैज्ञानिक कथानकों ने। **हर्बर्ट जॉर्ज वेल्स** ने 1898 ई. में अपने उपन्यास **वार आफ - द वर्ल्ड्स** में मंगलवासियों का रोमांचकारी विवरण प्रस्तुत किया। इस कथानक के मंगलवासी पानी की प्राप्ति के लिए हमारी पृथ्वी पर आक्रमण करते हैं।

मंगल पर विकसित सभ्यता का अस्तित्व होने की धारणा बीसवीं सदी के मध्यकाल तक बरकरार रही। मंगलवासियों के बारे में अनेकानेक कथानक लिखे गए। इनका आम लोगों पर कितना गहरा असर पड़ा, यह एक घटना से ही स्पष्ट हो जाता है। ओरसोन वेल्लेस ने 1938 ई. में एच.जी. वेल्स के उपर्युक्त कथानक को एक रूपक में रखकर अमेरिकी रेडियो पर प्रस्तुत किया और उसमें बताया कि मंगलवासियों के अंतरिक्षयान न्यू जरसी में उतर रहे हैं, तो अनेक श्रोताओं के दिलों में भय और आतंक छा गया था।

फिर, 1957 ई. के बाद अंतरिक्षयानों का युग शुरू हुआ तो मंगल का एक नितांत नया नजारा प्रकट हुआ। आज हम जानते हैं कि मंगल पर देखी गई नहरें दृष्टिभ्रम थीं। मंगल तक भेजे गए स्वचालित अंतरिक्षयानों से जानकारी मिली है कि उसकी सतह पर सूखी नदियों के पाट, ऊंचे-ऊंचे ज्वालामुखी-शिखर और लंबी-चौड़ी घाटियां तो हैं, मगर उन्नत किस्म के जीवन का कोई अस्तित्व नहीं हैं। हां, मंगल पर विशिष्ट किस्म के सूक्ष्म जीवाणु हो सकते

हैं। वस्तुतः समूचे सौरमंडल में, पृथ्वी के अलावा अन्य किसी पिंड पर उन्नत किस्म के जीव-जगत का कोई अस्तित्व नहीं है।

मगर ब्रह्मांड बहुत बड़ा है। वर्तमान सदी में ही हमें यथार्थ जानकारी मिली है कि हमारा यह विश्व कितना बड़ा है। जीवन के यथार्थ स्वरूप को समझ पाना भी वर्तमान सदी में ही संभव हुआ है। अतिदूर के पिंडों तक रेडियो-संदेश भेजने के लिए रेडियो-दूरबीन के रूप में खगोलविदों के लिए एक उपयोगी साधन भी वर्तमान सदी में ही उपलब्ध हुआ है। वस्तुतः 1957 ई. में अंतरिक्ष अनुसंधान के युग का उद्‌घाटन होने के बाद ब्रह्मांड में जीवन की तलाश के विषय में वैज्ञानिकों की दिलचस्पी लगातार बढ़ती ही गई। पराजीव-विज्ञान (एक्सोबाइयोलाजी) नामक एक नया विज्ञान ही अस्तित्व में आ गया है। ब्रह्मांड में जीवन की तलाश अब प्रकृति के अध्ययन का एक महत्वपूर्ण विषय बन गया है और खगोल-विज्ञान, जैव-रसायन, कंप्यूटर विज्ञान, कृत्रिम बुद्धि, संचार-विज्ञान, टेक्नालॉजी, समाज विज्ञान आदि अनेक विषय इसके अन्वेषण में सहयोग दे रहे हैं।

ब्रह्मांड में जीवन के अस्तित्व का विवेचन करने के लिए दो बुनियादी विषयों को ठीक से समझ लेना जरूरी है। एक – ब्रह्मांड कितना बड़ा है? दूसरा – जीवन क्या है? सबसे पहले हम विश्व के विस्तार पर विचार करेंगे।

भास्कराचार्य (1150 ई.), कोपर्निकस या गैलीलियो को यह पता नहीं था कि तारे हमसे कितनी दूर हैं। तारों की दूरियां मापना पहली बार 1838 ई. में संभव हुआ। तारे हमसे इतना अधिक दूर हैं कि उन दूरियों को हम किलोमीटरों में सुविधा से व्यक्त नहीं कर सकते। खगोलविद् विश्व के पिंडों की दूरियां प्रकाश के वेग से मापते हैं। प्रकाश की किरणें एक सेकेंड में करीब 3,00,000 कि. मी. दौड़ती हैं। भौतिक विश्व में प्रकाश की गति ही महत्तम गति है। तीन लाख कि. मी. प्रति सेकेंड के वेग से प्रकाश की किरणें एक वर्ष में जितनी दूरी तक जाती हैं उसे एक **प्रकाश-वर्ष** दूरी कहते हैं। एक प्रकाश-वर्ष दूरी लगभग 94,63,00,00,00,000 किलोमीटरों के बराबर होती है।

धरती से प्रेषित प्रकाश-किरणें करीब सवा सेकेंड में चंद्र तक पहुंच जाती हैं। सूर्य हमसे करीब 15 करोड़ कि. मी. दूर है, मगर सूर्य की किरणें इस अंतराल को करीब आठ मिनटों में तय करके धरती पर पहुंच जाती हैं। इसीलिए हम कह सकते हैं कि सूर्य हमसे करीब 8 प्रकाश-मिनट दूर है।

सूर्य की किरणें करीब साढ़े पांच घंटे बाद सबसे दूर के प्लूटो ग्रह तक पहुंचती हैं। अन्य शब्दों में, हमारे सौर-मंडल का व्यास करीब 11 प्रकाश-घंटे है।

सूर्य हमसे करीब 8 प्रकाश-मिनट दूर है। मगर सूर्य के बाद आकाश का दूसरा सबसे नजदीक का तारा (प्रोक्सिमा सेंटौरी) हमसे करीब 4.3 प्रकाश-वर्ष, यानी 40000 अरब कि. मी. दूर है। आकाश में दिखाई देने वाले अन्य सभी तारे हमसे और भी कई गुना दूर हैं, सैंकड़ों प्रकाश-वर्ष दूर हैं।

आकाश में जितने भी तारे दिखाई देते हैं वे सभी एक योजना के सदस्य हैं। तारों की इस योजना को हम आकाशगंगा कहते हैं। आकाशगंगा एक मंदाकिनी (गैलेक्सी) है। आकाशगंगा में करीब 100 अरब तारे हैं। आकाशगंगा का व्यास 1,00,000 प्रकाश-वर्ष है और केंद्रभाग में इसकी मोटाई करीब 20 हजार प्रकाश-वर्ष है। हमारा सूर्य आकाशगंगा के केंद्रभाग से करीब 30 हजार प्रकाश-वर्ष दूर है।

जिस तरह पृथ्वी सौर-मंडल के केंद्रभाग में नहीं, उसी तरह सूर्य भी आकाशगंगा के केंद्रभाग में नहीं है। सूर्य, ग्रहों तथा उपग्रहों को साथ लेकर, 30 हजार किलोमीटर की दूरी से

और प्रति सेकेंड 220 किलोमीटर के वेग से आकाशगंगा के केंद्र की सतत् परिक्रमा कर रहा है। सूर्य को आकाशगंगा की एक परिक्रमा पूरी करने में करीब 25 करोड़ साल लगते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि धरती पर मानव के अस्तित्व के संपूर्ण इतिहास में सूर्य ने आकाशगंगा का एक पूरा चक्कर भी नहीं लगाया है!

इतनी विशाल है हमारी आकाशगंगा-मंदाकिनी। सूर्य (इसके साथ हम भी) पहिये के आकार की इस आकाशगंगा के एक किनारे पर है, इसलिए आकाश में यह हमें सघन तारों के एक पट्टे की तरह दिखाई देती है।

लेकिन विश्व में सिर्फ यही एक आकाशगंगा (मंदाकिनी) नहीं है। खगोलविदों ने ब्रह्मांड में करोड़ों मंदाकिनियों की खोज की है। इनमें से प्रत्येक में अरबों तारे हैं। हमारी आकाशगंगा के बाहर लगभग इतनी ही बड़ी सबसे नजदीक की देवयानी (एंड्रोमेडा) मंदाकिनी हमसे 20 लाख प्रकाश-वर्ष दूर है। इसका अर्थ यह है कि देवयानी मंदाकनी के जिस प्रकाश को आज हम धरती पर ग्रहण कर रहे हैं वह अपने स्रोत-स्थान से 20,00,000 साल पहले निकला था। उस समय धरती पर मानव का अभी उदय ही होने जा रहा था।

ब्रह्मांड की दूसरी मंदाकिनियां हमसे करोड़ों-अरबों प्रकाश-वर्ष दूर हैं। संसार की सबसे शक्तिशाली दूरबीन से करीब 8 अरब प्रकाश-वर्ष दूर की मंदाकिनियों के चित्र उतारे गए हैं। इधर के वर्षों में 17-18 अरब प्रकाश-वर्ष दूर की मंदाकिनियों के बारे में भी जानकारी मिली है। इसका अर्थ यह हुआ कि विश्व कम से कम 17-18 अरब वर्ष पुराना तो है ही।

क्या इतने बड़े ब्रह्मांड में, जिसमें करोड़ों-अरबों मंदाकिनियां हैं और प्रत्येक मंदाकिनी में अरबों तारे हैं, यह संभव है कि एक सामान्य तारे के एक सामान्य ग्रह पर ही जीव-जगत का उद्भव तथा विकास हुआ है?

यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि जैसा द्रव्य सूर्य, सौर-मंडल के ग्रहों-उपग्रहों या हमारी धरती पर मौजूद है, वैसा ही विश्व के अन्य पिंडों पर भी पाया जाता है। दूसरी महत्व की बात यह है कि जो भौतिक नियम पृथ्वी के द्रव्य पर लागू होते हैं, वही नियम विश्व के दूसरे पिंडों के द्रव्य पर भी लागू होते हैं।

इस तमाम जानकारी के आधार पर अनेक वैज्ञानिकों का विश्वास बना है कि जीवन का सृजन और विकास केवल हमारी धरती पर ही हुआ हो, यह संभव नहीं। विशाल विश्व में विविध प्रकार के जीवन के अस्तित्व के लिए बेशुमार संभावनाएं मौजूद हैं। मगर सर्वप्रथम यही जानना उपयोगी होगा कि हमारी धरती पर जीव-जगत का उद्भव किस प्रकार हुआ।

यहां हम जीवन की उत्पत्ति से संबंधित पुराने मिथकों, धार्मिक मान्यताओं या दार्शनिकों के विचारों की चर्चा नहीं करेंगे। वैज्ञानिक दृष्टि से जीवन की उत्पत्ति और विकास के बारे में पिछली सदी से ही सोचा जाने लगा है। चार्लेस **डारविन** और **अलफ्रेड वालेस** ने प्राकृतिक चयन के आधार पर विकासक्रम का एक सिद्धांत प्रस्तुत किया। डारविन का शायद यह भी विश्वास रहा कि धरती के आरंभिक इतिहास में अजैव द्रव्य से, रासायनिक विकास के अंतर्गत, प्राथमिक जैव रूपों का प्रादुर्भाव हुआ था।

कार्ल मार्क्स के सहयोगी फ्रेडरिक एंगेल्स ने भी इस मान्यता को अपना समर्थन दिया। उन्होंने कहा कि जीवन की उत्पत्ति, कुछ विशिष्ट अनुकूल परिस्थितियों में अजैव द्रव्य से विकासक्रम के अंतर्गत हुई है। द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार जीवन द्रव्य का ही एक विशिष्ट रूप है।

लेकिन इन मान्यताओं को स्वीकार करने में अनेक कठिनाइयां थीं । मुख्य सवाल है – यदि प्रथम जीव का उद्भव अजैव घटकों से हुआ है, तो उसने अपनी संरचना के लिए जैव घटक कहां से प्राप्त किये ?

इस सवाल को सुलझाने के लिए रूसी वैज्ञानिक **ए. आई. ओपारिन** ने 1924 ई. में जीवन की उत्पत्ति के बारे में एक नया व्यापक सिद्धांत प्रस्तुत किया। ओपारिन ने स्पष्ट किया कि जीवन की उत्पत्ति महज एक संयोग नहीं है, बल्कि इस धरती पर द्रव्य के विकासक्रम का एक दौर है। जीवन की उत्पत्ति के पहले धरती पर जैव पदार्थों का संश्लेषण हुआ है। जीवन की उत्पत्ति के पहले जैव पदार्थों के संश्लेषण की प्रक्रिया खूब तीव्र रही, मगर बाद में स्वयं जीवधारी बड़ी तेजी से धरती पर जैव पदार्थों का सृजन करने लगे। ओपारिन ने अपने कृतित्व में उन सभी कदमों को स्पष्ट किया जिनमें से गुजरकर अंततः जीवधारियों का उद्भव हुआ। मोटे तौर पर जैव विकास के ये कदम हैं : 1. एमिनो एसिडों-जैसे छोटे अणुओं का संश्लेषण, 2. इन छोटे अणुओं से प्रोटीनों और न्यूक्लेइक एसिडों जैसे बड़े जैवाणुओं का संयोजन, 3. इन बडे जैवाणुओं से अधिकाधिक जटिल जैवाणुओं में संगठन, और 4. जीवन का उद्भव।

ओपारिन के कृतित्व का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। ओपारिन के सिद्धांत को **जे. बी. एस. हाल्देन, जे. डी. बर्नाल** आदि वैज्ञानिकों ने परिष्कृत किया। ओपारिन के सिद्धांत के प्रत्येक कदम का अब प्रयोगशालाओं में परीक्षण किया जा सकता था।

इस दिशा में पहला महत्वपूर्ण प्रयोग अमेरिका के तरूण वैज्ञानिक **स्टेनली मिल्लेर** ने 1953 ई. में किया। उन्होंने मीथेन (कार्बन का स्रोत), एमोनिया (नाइट्रोजन का स्रोत), हाइड्रोजन और पानी के मिश्रण को लेकर उसमें विद्युत-धाराएं छोड़ी। इस प्रयोग के जरिए उन्होंने विविध प्रकार के एमिनो एसिड प्राप्त किए। उनके बाद अन्य वैज्ञानिकों ने ऊर्जा के स्रोत के लिए पराबैंगनी किरणों, ऊष्मा लैम्पों आदि का उपयोग करके इसी तरह के परिणाम प्राप्त किए। फिर अमेरिका के ही एक अन्य वैज्ञानिक **सिडनी फॉक्स** ने परख नली में तैयार किए गए एमिनो-एसिडों से लघु प्रोटीन घटक तैयार किये।

यहाँ यह जान लेना उपयोगी होगा कि हमारी पृथ्वी का निर्माण करीब 4.6 अरब साल पहले हुआ। यह भी स्पष्ट हुआ है कि धरती पर जीवन का उद्भव करीब 3.5 अरब साल पहले हुआ। अन्य शब्दों में, धरती की परिस्थितियों में जीवन का उद्भव होने में 1.1 अरब सालों का लंबा समय लगा।

आज अधिकांश वैज्ञानिकों का मत है कि आरंभिक पृथ्वी के वायुमंडल में आक्सीजन नहीं थी। आक्सीजन का निर्माण बाद में प्रकाश-संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) की प्रक्रिया के ज़रिए हुआ। आरंभ में पृथ्वी के वायुमंडल में मीथेन, एमोनिया, हाइड्रोजन और जलवाष्प की ही प्रधानता थी।

मिल्लेर और फॉक्स के बाद कई वैज्ञानिकों ने इस क्षेत्र में प्रयोग किए और अधिकाधिक जटिल जैव घटक प्राप्त किए। श्रीलंका के वैज्ञानिक **साइरिल पोन्नमपेरूमा** ने प्रयोगशाला में पृथ्वी की आरंभिक परिस्थितियों को दोहराकर न्यूक्लेइक एसिडों के रासायनिक घटक प्राप्त किए।

इधर के वर्षों में सबूत मिले हैं कि जैव घटकों का रासायनिक संयोजन बाह्य अंतरिक्ष में भी हो सकता है। धरती पर गिरने वाले उल्का-प्रस्तरों में से करीब दो प्रतिशत में कार्बन-युक्त जैव यौगिक पाये गये हैं। कुछ उल्का-प्रस्तरों में एमिनो एसिड भी खोजे गये हैं। पोन्नमपेरूमा ने आस्ट्रेलिया में 1969 ई. में ताजे गिरे हुए एक उल्का-प्रस्तर का अन्वेषण करके उसमें विभिन्न प्रकार के 17 एमिनो एसिडों की खोज की।

विश्व में रिक्त आकाश-जैसी कोई चीज नहीं है। जहां दिक् है वहां किसी न किसी रूप में द्रव्य अवश्य विद्यमान है। तारों के बीच के अंतरिक्ष में भी गैस और धूल के रूप में काफी सारा द्रव्य मौजूद है। इधर के वर्षों में जानकारी मिली है कि सौर-मंडल के बाहर अन्तर्नक्षत्रीय दिक् में भी जैव रसायन मौजूद हैं। 1968 ई. में अमेरिका के एक वैज्ञानिक दल ने रेडियो-दूरबीन से आकाशगंगा के केंद्रभाग की ओर से आने वाले ऐसे विकिरण को ग्रहण किया जो केवल एमोनिया के अणुओं से ही उत्सर्जित हो सकता है। उसके बाद तारों के बीच के अंतरिक्ष में मौजूद गैसीय मेघों में कार्बन-मोनोक्साइड, फार्मलडेहाइड, पानी आदि के अणु खोजे गए। ये अणु जीवन के लिए अपरिहार्य हैं।

इन अनुसंधानों से निष्कर्ष निकलता है कि सौर-मंडल के बाहर के अंतरिक्ष में भी जीवन के लिए परमावश्यक बुनियादी रसायन मौजूद हैं। मगर यह जरूरी नहीं है कि विश्व में अन्यत्र भी जीवन का विकास उसी प्रकार हुआ हो जैसा कि हमारी धरती पर हुआ है। विश्व में अन्य स्थानों पर वहां की भिन्न परिस्थितियों के अनुरूप ही विविध प्रकार के जीवन का विकास हुआ होगा।

तात्पर्य यह कि इस विशाल ब्रह्मांड में केवल हमारी पृथ्वी पर ही जीवन का विकास हुआ हो, यह संभव नहीं है। आकाशगंगा-मंदाकिनी के करीब 100 अरब तारों के करोड़ों ग्रहों पर जीवन का विकास हुआ होगा। यहाँ हम आकाशगंगा के केवल वैसे ही ग्रहों पर विचार करेंगे जो हमारी पृथ्वी की तरह हो सकते हैं। ऐसे कितने ग्रह हो सकते हैं? इनमें से कितने ग्रहों पर बुद्धिमान सभ्यताएं विकसित हुई होंगी? इन बुद्धिमान सभ्यताओं में से कितनी सभ्यताएं हमारी तरह दूरसंचार के साधन विकसित कर चुकी होंगी? (मानव ने दूरसंचार के साधन वर्तमान सदी में ही विकसित किये हैं।)

इन सवालों के उत्तर जानने के लिए अमेरिकी वैज्ञानिक **फ्रैंक ड्रेक** ने 1960 के दशक में एक समीकरण प्रस्तुत किया। यह ड्रेक समीकरण विभिन्न घटकों के आधार पर आकाशगंगा में बुद्धिमान सभ्यताओं की संख्या निर्धारित करता है।

पहला घटक है – आकाशगंगा में प्रति वर्ष निर्मित होने वाले नये तारों की संख्या। खगोलविदों का मत है कि आकाशगंगा में प्रतिवर्ष औसतन 10 तारे जन्म लेते रहे हैं।

दूसरा घटक है – ऐसे तारों की संख्या जिनका ग्रह-मालिकाएं हो सकती हैं। दूरबीनों से दूर के तारों के ग्रहों को देख पाना संभव नहीं है। मगर ऐसे कई अप्रत्यक्ष तरीके हैं जिनके जरिए दूर के तारों के इर्द-गिर्द चक्कर लगाने वाले ग्रहों का पता लगाया जा सकता है। इधर के वर्षों में बर्नार्ड का तारा, अभिजित तारा, बीटा पिक्टोरिस तारा और वी.बी-8 तारे के इर्द-गिर्द ग्रह होने के बारे में ठोस सबूत मिले हैं। तारों के निर्माण की प्रक्रिया पर विचार करें तो स्पष्ट होता है कि आकाशगंगा के 97 प्रतिशत तारों के इर्द-गिर्द ग्रह होने चाहिए।

तीसरा घटक है - आकाशगंगा की ग्रह-मालिकाओं में उन ग्रहों की संख्या जिन पर जीवन के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियां हो सकती हैं। हमारे सूर्य तारे को और इसकी ग्रह-मालिका को एक प्रतिरूप (मॉडल) के तौर पर लिया जाए तो स्पष्ट होता है सूर्य-जैसे तारों के कम से कम एक ग्रह पर जीवन के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियां अवश्य होनी चाहिए।

चौथा घटक है – उन ग्रहों की संख्या जहां वस्तुतः जीवन का उद्भव और विकास हो सकता है। हम बता चुके हैं कि आज से करीब 3.5 अरब साल पहले किन परिस्थितियों में पृथ्वी पर जीवन का आरंभ हुआ। जीवन धारण करने योग्य प्रायः प्रत्येक ग्रह आरंभिक पृथ्वी-जैसी परिस्थिति से अवश्य गुजरा होगा। इसलिए वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि

जिन ग्रहों पर जीवन के उद्भव के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ हैं उन पर जीवन का उद्भव और विकास अवश्य हुआ होगा।

पांचवां घटक है – उन ग्रहों की संख्या जिन पर बुद्धिमान प्राणियों का विकास हुआ होगा। "बुद्धिमान" किसे कहें, यह एक विवादास्पद विषय है। यहां हम "बुद्धिमान सभ्यता" उसे मानेंगे जो अन्तर्नक्षत्रीय संबंध स्थापित करने की चाह रखती है और उसके लिए साधन जुटाती है।

छटा घटक है – उन बुद्धिमान सभ्यताओं की संख्या जो टेक्नालॉजी के मामले में कम से कम हमारे बराबर उन्नत हैं। खगोलविदों का अनुमान है कि केवल दस प्रतिशत सभ्यताएं ही इस स्तर पर पहुँच चुकी होंगी।

सातवां और अंतिम घटक है – टेक्नालॉजी की दृष्टि से उन्नत ऐसी सभ्यताओं का औसत जीवनकाल। यह एक महत्वपूर्ण घटक है। किसी पृथ्वीतर सभ्यता का अस्तित्व केवल इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपना अस्तित्व टिकाए रखने में कितनी समर्थ बनी है। हमारा अपना उदाहरण हमारे सामने है। इधर के करीब चार दशकों में हमने समूची मानव सभ्यता के विनाश के लिए पर्याप्त साधन जुटा लिए हैं। इसलिए कई निराशावादी वैज्ञानिक सोचते हैं कि अधिकांश पृथ्वीतर सभ्यताएं अपना अस्तित्व मिटा चुकी होंगी और आकाशगंगा में हमारे अलावा दो या तीन ही ऐसी सभ्यताएं बची होंगी जो दूरसंचार संबंध स्थापित करने में समर्थ हैं।

मगर कई आशावादी वैज्ञानिकों का मत है कि आकाशगंगा में ऐसी अनेक सभ्यताएं हो सकती हैं जिन्होंने महाविनाश से अपने को बचा लिया है। तब ड्रेक समीकरण के अनुसार, आकाशगंगा (मंदाकिनी) में ऐसी बुद्धिमान सभ्यताओं की संख्या 10,00,000 पर पहुँचती है जो दूरसंचार संबंध स्थापित करने में समर्थ हैं। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि ऐसी कुछ बुद्धिमान सभ्यताएं 100 से 1000 प्रकाश-वर्ष दूरी के घेरे में अवश्य खोजी जा सकती हैं।

ड्रेक समीकरण के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया है कि हमारी आकाशगंगा में करीब दस लाख उन्नत सभ्यताएं अवश्य होनी चाहिए। मगर, जैसा कि हमने देखा है, ड्रेक समीकरण के सभी घटकों के बारे में फिलहाल हमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त नहीं हुई है। कुछ ऐसे भी वैज्ञानिक हैं जो मानते हैं कि हमारी मंदाकिनी में पृथ्वी की मानव-सभ्यता के अलावा अन्य किसी उन्नत सभ्यता का अस्तित्व नहीं है। वैज्ञानिक **इ· टिपलर** का मत है कि हमारी आकाशगंगा में दूरसंचार संबंध स्थापित करने में समर्थ केवल एक ही उन्नत सभ्यता का अस्तित्व है, और वह है हमारी अपनी सभ्यता!

यह संभव है कि कोई पृथ्वीतर सभ्यता कृत्रिम बुद्धि वाली ऐसी मशीनों का निर्माण कर ले जो आगे अपनी तरह की मशीनों का सृजन करती चली जाएं। तब वही मशीनें दूर-दूर तक अंतरिक्ष यात्राएं करके अनेक पिंडों पर अपने उपनिवेश स्थापित कर सकती हैं। टिपलर का कहना है कि, चूंकि वैसी कोई मशीन धरती पर नहीं पहुंची है, इसलिए भी आकाशगंगा में किसी पृथ्वीतर उन्नत सभ्यता का कोई अस्तित्व नहीं।

टिपलर की इन दलीलों को अनेक वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करते, मगर एक अमेरिकी सिनेटर ने इनका उपयोग करके इस क्षेत्र के अनुसंधान के लिए उपलब्ध कराये जाने वाले सरकारी धन पर रोक लगाने में सफलता प्राप्त की। उस सिनेटर ने जुलाई 1981 ई· में अमेरिकी कांग्रेस के सामने कहा था : यदि हमारे वैज्ञानिक ब्रह्मांड में बुद्धिमान प्राणियों की खोज करना चाहते हैं तो उन्हें इसकी शुरूआत यहां वाशिंगटन से करनी चाहिए। तब वे महसूस करेंगे कि

सौर-मंडल के बाहर बुद्धिमान प्राणियों की खोज करने की अपेक्षा यहां उनकी खोज कर पाना ज्यादा कठिन काम है।

वाशिंगटन की स्थिति जो भी हो, अधिकांश वैज्ञानिकों का विश्वास है कि समूचे विश्व में केवल हम ही बुद्धिमान प्राणी नहीं हैं।

पिछली सदी से कुछ वैज्ञानिकों का यह भी मत रहा है कि जीवन का आरंभ धरती पर नहीं हुआ है, बल्कि किसी दूर के पिंड से आरंभिक जीवाणु पृथ्वी पर पहुंचे हैं। ये जीवाणु या तो उल्कापिंडों के साथ आए या ब्रह्मांडीय धूलिकणों के साथ। **फ्रेड होयल** का यह भी मत है कि धूमकेतुओं के माध्यम से आज भी विभिन्न किस्म के विषाणु (वायरस) धरती के वायुमंडल में प्रवेश करते रहते हैं।

इधर के वर्षों में **डी. एन. ए.** की कुंडली-नुमा रचना की खोज करने वाले नोबेल पुरस्कार-विजेता वैज्ञानिक **फ्रांसिस क्रिक** ने धरती पर जीवन के उदय के बारे में एक नई परिकल्पना प्रस्तुत की है। उनकी मान्यता है कि धरती पर जीवन के 'बीज' किसी अन्य उन्नत सभ्यता ने बोये हैं। वे यह भी कहते हैं कि आज से करीब 3.5 अरब साल पहले धरती पर ये बीज (जीवाणु) किसी उन्नत सभ्यता ने अंतरिक्षयान के जरिए भेजे होंगे। यही कारण है कि आज धरती के समस्त जीव-जगत की आनुवंशिक कुंडली (डी. एन. ए. कोड) की रचना एकरूप है। वस्तुतः चार न्यूक्लिओटाइडों और 20 एमिनो एसिडों के मेल से 10 करोड़ किस्म के आनुवंशिक कोड बन सकते हैं। परंतु आज सभी किस्म के जीवों में एक ही किस्म के आनुवंशिक कोड का अस्तित्व है। इसलिए **क्रिक** इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि धरती पर एक-से आनुवंशिक कोड वाले जीवाणुओं का रोपण किसी अन्य उन्नत सभ्यता ने किया है।

फ्रांसिस क्रिक की इस परिकल्पना में कई खामियां हैं। पहली बात तो यही है कि यह कल्पना जीवन की उत्पत्ति की पहेली पर कोई प्रकाश नहीं डालती। प्रश्न बना ही रहता है कि उन्नत सभ्यता वाले उस अन्य ग्रह पर जीवन का उदय किस प्रकार हुआ होगा। यह भी प्रश्न उठता है कि उस उन्नत सभ्यता ने केवल एक ही आनुवंशिक कोड के जीवाणु धरती पर क्यों भेजे। क्या उस अन्य पिंड पर भी एक ही आनुवंशिक कोड वाले जीवों का उदय हुआ है?

तात्पर्य यह कि फ्रांसिस क्रिक की परिकल्पना जीवन की उत्पत्ति की पहेली को सुलझाने में असमर्थ है। उनकी पत्नी भी उनकी इस परिकल्पना को एक वैज्ञानिक कथानक ही मानती है। धरती पर जीवन की उत्पत्ति के सवाल को हमें धरती के परिवेश में ही सुलझाना होगा।

यह भी जरूरी नहीं है कि सुदूर के सभी पृथ्वीतर पिंडों पर धरती-जैसे ही जीव-जगत का विकास हुआ हो। धरती का जीव-जगत कार्बन के रसायन पर आधारित है। मगर ऐसे अनेक पिंड हो सकते हैं जहां जीवन का आधार एमोनिया या सिलिकन हो। उदाहरण के लिए, किसी अन्य पिंड पर पानी का स्थान एमोनिया ले लेता है, तो वहां का जीवन एमोनिया के जैवाणुओं पर आधारित होगा। हम पानी पीते हैं और आक्सीजन ग्रहण करते हैं। उस पिंड के प्राणी एमोनिया पीते होंगे और नाइट्रोजन ग्रहण करते हैं। मगर फिलहाल ये सब कल्पनाएं ही हैं।

परंतु इतना स्पष्ट है कि इस विशाल विश्व में केवल हम ही हम नहीं हैं। हमारी पृथ्वी की भौतिक परिस्थितियां और इनमें जीव-जगत का उदय तथा विकास प्रकृति का एकाकी चमत्कार नहीं है। ऐसा चमत्कार विशाल विश्व के अनेकानेक पिंडों पर घटित होना सहज संभव है।

संपर्क

पृथ्वीतर सभ्यताओं के अस्तित्व के बारे में अब तक हमें भले ही कोई ठोस सबूत न मिला हो, पर उनकी खोज अवश्य जारी रहनी चाहिए। हमने देखा है कि ड्रेक समीकरण के अनुसार, आकाशगंगा के 100 अरब तारों में से 10 लाख तारों के ग्रहों पर उन्नत जीवन का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि आकाशगंगा के 1,00,000 तारों में से एक तारे के ग्रह पर बुद्धिमान प्राणियों का निवास होना चाहिए। इस अनुमान को आकाशगंगा की व्यवस्था पर लागू करें तो स्पष्ट होता है 100 प्रकाश-वर्ष की दूरी पर कम से कम एक बुद्धिमान सभ्यता का अस्तित्व अवश्य होना चाहिए।

इतनी दूर की बुद्धिमान सभ्यता के साथ कैसे होगा संपर्क ?

फिलहाल हमारे पास तीन ऐसे साधन उपलब्ध हैं जिनके जरिए पृथ्वीतर सभ्यताओं के साथ संपर्क स्थापित किया जा सकता है : (1) मानवयुक्त अंतरिक्षयान भेजना, (2) मानव-रहित अंतरिक्षयान भेजना और (3) रेडियोतरंगों से या लेसर-किरणों से संदेश भेजना।

सौर-मंडल के बाहर के दूर के पिंडों तक मानव-युक्त अंतरिक्षयान भेजना व्यावहारिक उपाय नहीं है, कम से कम फिलहाल। धरती का मानव चंद्रमा की यात्रा करके लौट आया है, और हम जानते हैं इस यात्रा में करीब एक सप्ताह का समय लगता है। अब मंगल की यात्रा के लिए तैयारियां हो रही हैं। अभी हाल ही में सोवियत संघ का स्वचालित **फोबोस** यान करीब ढाई सौ दिनों की लंबी यात्रा के बाद मंगल तथा उसके फोबोस उपग्रह के पास पहुंचा है। मौजूदा साधनों से मंगल की यात्रा करके लौटने में आदमी को करीब तीन साल का समय लग सकता है। एक सोवियत अंतिरिक्षयात्री अंतरिक्ष में सतत एक साल तक रहने का कीर्तिमान स्थापित कर चुका है। अतः यह सुनिश्चित है कि आदमी अगले एक-दो दशक में मंगल की यात्रा कर लेगा।

सुदूर के प्लूटो ग्रह तक की यात्रा करके लौटने में करीब 25 सालों का समय लग सकता है। देर-सवेर धरती का मानव समूचे सौर-मंडल की निश्चय ही छानबीन कर लेगा। मगर हम जानते हैं कि सौर-मंडल के किसी अन्य ग्रह या उपग्रह पर उन्नत किस्म के जीव-जगत का अस्तित्व नहीं है। उन्नत सभ्यताओं की खोज हमें दूर के तारों की ग्रह-मालिकाओं में ही करनी होगी।

सबसे नजदीक का **प्रोक्सिमा-सेन्टौरी** तारा हमसे 4.3 प्रकाश-वर्ष दूर हैं। हमने यह भी देखा है कि 100 प्रकाश-वर्ष दूर के तारों में से औसतन केवल एक तारे के ग्रह पर उन्नत जीवन होने की संभावना है। इसलिए प्रकाश के वेग (एक सेकंड में तीन लाख किलोमीटर) से भी यात्रा करना हो, तो भी फिलहाल तारों तक की मानव यात्राएं संभव नहीं हैं।

हां, सौर-मंडल के बाहर के अंतरिक्ष में स्वचालित अंतरिक्षयान भेजना संभव है और इस दिशा में कुछ प्रयास भी हुए हैं। सबसे पहले 1972 ई. में स्वचालित **पायोनियर-10** यान धरती से छोड़ा गया था। उसके बाद पायोनियर-11 छोड़ा गया। इन यानों के साथ एक-एक प्लेट जोड़ी गई है। इन प्लेटों पर धरती की स्थिति तथा इस पर मानव के अस्तित्व को व्यक्त करने वाला एक "संदेश" अंकित किया गया है। पायोनियर-10 यान अब सौर-मंडल के बाहर पहुंच गया है।

पायोनियर यानों के बाद दो स्वचालित **वोयेजर** यान 1977 में छोड़े गए। इन यानों ने बृहस्पति तथा शनि के वलयों तथा चंद्रों के बारे में महत्व की जानकारी दी है। चंद साल बाद ये यान भी सौर-मंडल के बाहर पहुंच जाएंगे। दोनों वोयेजर यानों के साथ तांबे के फोनोग्राफ रिकार्ड हैं, जिन्हें एल्युमिनियम के खोल में रखा गया है। खोल पर कुछ-कुछ पायोनियर-प्लेट जैसी ही जानकारी अंकित कर दी गई है। रिकार्ड में धरती की विभिन्न भाषाओं के अलावा व्हेल-जैसे प्राणी की आवाज भी अंकित है। साथ ही, कई प्रकार का संगीत भी भरा गया है। इसमें केसर बाई का "जाते कहां हो" गीत भी है। आशा की जाती है कि ये रिकार्ड अन्तर्नक्षत्रीय दिक् में करोड़ों साल तक टिके रहेंगे।

पायोनियर और वायजर यानों को सौर-मंडल के बाहर के अंतरिक्ष में भेजने का प्रयोजन यह है कि हम यदि किसी पृथ्वीतर सभ्यता को खोज नहीं सकते तो कोई पृथ्वीतर सभ्यता ही हमें खोज ले। हमारे इन संदेशों से वे इतना तो जान ही लेंगे कि उनके अलावा भी विश्व में किसी अन्य सभ्यता का अस्तित्व है।

किसी पृथ्वीतर सभ्यता तक संदेश भेजने का तीसरा और सर्वोत्तम साधन है -- रेडियो-तरंगें। रेडियो-तरंगें प्रकाश के वेग से दौड़ती हैं, अंतरिक्ष में अवशोषित नहीं होतीं और दूर-दूर तक पहुंचती हैं। इनको प्रेषित करने में ऊर्जा की खपत भी कम होती है।

लेकिन सवाल उठता है -- पृथ्वीतर सभ्यताओं के साथ संपर्क स्थापित करने के लिए कितनी लंबाई की रेडियो -तरंगों का इस्तेमाल करना होगा?

हाइड्रोजन विश्व में सर्वत्र विद्यमान है। हाइड्रोजन के मुक्त परमाणु 21 सेंटीमीटर लंबाई की तरंगें उत्सर्जित करते हैं। इसलिए निष्कर्ष निकाला गया है कि पृथ्वीतर सभ्यताएं 21 सें.मी. लंबाई की रेडियो-तरंगों में संदेश प्रेषित या ग्रहण कर सकती हैं।

वेस्ट इंडीज के प्युएर्टोरिको द्वीप के **आरिसिबो** स्थान पर 300 मीटर व्यास की एक विशाल रेडियो-दूरबीन है। एक कटोरे-नुमा प्राकृतिक घाटी में निर्मित यह रेडियो-दूरबीन दूर-दूर के तारों तक रेडियो संदेश भेज सकती है, उन तारों से आने वाली रेडियो-तरंगों को पकड़ सकती है। इस भव्य रेडियो-दूरबीन के जरिए, **ओज्मा** योजना के अंतर्गत 1960 में ड्रेक, पामेर तथा जुकेरमान ने 21 सें.मी. लंबाई की रेडियो-तरंगें खोजने के प्रयास किए। इस खोज के लिए 10-11 प्रकाश-वर्ष दूर के **इप्साइलन-वैतरणी** (एरिदानी) और **टाउ-तिमिंगल** (सेतस्) तारों को चुना गया था, क्योंकि इनके इर्द-गिर्द ग्रह होने के बारे में जानकारी मिली है। मगर इस प्रयास में कोई सफलता नहीं मिली। परंतु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि किसी पृथ्वीतर सभ्यता का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है। हमने देखा है कि ड्रेक समीकरण के अनुसार 100 प्रकाश-वर्ष की दूरी तक औसतन एक ही उन्नत सभ्यता का अस्तित्व हो सकता है।

पृथ्वीतर सभ्यताओं के साथ संपर्क स्थापित करने की दिशा में आरिसिबो दूरबीन के जरिए एक और महत्वपूर्ण प्रयास हुआ है। फ्रैंक ड्रेक ने 1974 में इसी दूरबीन से करीब 25,000 प्रकाश-वर्ष दूर के **एम-13** नामक एक तारा-गुच्छ की ओर एक संदेश प्रेषित किया। यह संदेश 'शून्य' और 'एक' की श्रृंखला में है, अर्थात् "बिटों" में है। इस संदेश में कुल 1679 बिटों का प्रयोग हुआ है। अभाज्य संख्याएं 73 और 23 को गुना करने पर संख्या 1679 प्राप्त होती है। 1679 बिटों को 23 स्तंभों और 73 पंक्तियों में स्थापित करने पर संदेश का स्वरूप काफी स्पष्ट हो जाता है। (देखिए चित्र : 1)।

ड्रेक का यह रेडियो संदेश अब करीब 15 प्रकाश-वर्ष दूरी तक पहुंच गया है। अन्य शब्दों में धरती का यह संदेश नजदीक के कई तारों के परे पहुंच गया है। मगर अपने लक्ष्य

यानी एम-13 तारा-गुच्छ तक पहुंचने में इसे पूरे 25,000 साल लगेंगे। करीब 100 प्रकाश-वर्ष दूरी के घेरे में 800 से लेकर 1000 तक तारे हैं। इनकी छानबीन करने के लिए इधर के वर्षों में कुछ नई योजनाएं अस्तित्व में आई हैं। खगोलविद **बर्नार्ड एम· ओलिवर** की **साइक्लोप** योजना के अनुसार 5 कि· मी· के फासले पर सौ-सौ मीटर व्यास की रेडियो-दूरबीनों का एक जाल स्थापित करके 30 साल के भीतर 1000 प्रकाश-वर्ष दूर के सभी तारों की छानबीन की जा सकती है। मगर यह योजना काफी खर्चीली है।

अब कंप्यूटरों को रेडियो-दूरबीनों के साथ जोड़कर तेजी से तारों की छानबीन करना संभव हो गया है। इस टेक्नालॉजी के आधार पर तारों से आने वाले संदेशों की छानबीन करने के लिए कुछ नई योजनाएं अस्तित्व में आई हैं। अब **नासा** भी पुनः पृथ्वीतर सभ्यताओं की खोजबीन के लिए एक भव्य योजना बना रहा है। इस योजना के अंतर्गत आरिसिबो रेडियो दूरबीन तथा अन्य रेडियो दूरबीनों से 100 प्रकाश-वर्ष दूरी तक के करीब एक हजार तारों के संसार की छानबीन की जाएगी।

दूरसंचार की क्षमता हमने वर्तमान सदी में ही हासिल की है। हमारे टेलीविजन कार्यक्रम भी सतत अंतरिक्ष पहुंच रहे हैं। मगर 1936 ई· में ने जिन ओलंपिक खेलों का उद्घाटन हुआ था और जिन्हें टी· वी· पर दिखाया गया था (उन्हीं खेलों में हाकी के जादूगर ध्यानचंद ने अपना कमाल दिखाया था), वे अभी किसी पृथ्वीतर सभ्यता के टी· वी· स्क्रीन तक नहीं पहुंचे होंगे। यदि किसी पृथ्वीतर सभ्यता ने सौर-मंडल की ओर कोई रेडियो संदेश भेजा हो तो अभी चंद दशक पहले तक उसे ग्रहण करने में हम समर्थ नहीं थे।

पृथ्वीतर सभ्यताओं की तलाश के प्रयास निश्चय ही जारी रहने चाहिए। साथ ही, यहां धरती पर हमें अपनी सभ्यता के अस्तित्व को टिकाए रखने के प्रयास भी सतत जारी रखने होंगे।

□
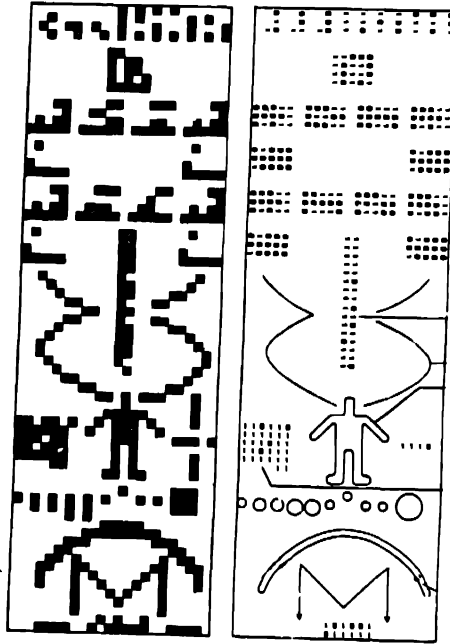
आरिसिबो रेडियो-दूरबीन से भेजा गया 1679 बिटों का संदेश।
इसमें सबसे ऊपर द्विआधारी अंक-पद्धति में 1 से 10 तक की संख्याएं हैं। उसके नीचे हाइड्रोजन, कार्बन, नाइट्रोजन, ऑक्सीजन तथा फास्फोरस के परमाणु-नंबर दिए गए हैं। उनके नीचे डी. एन. ए. के सूत्र तथा उसकी रचना को स्पष्ट किया गया है। फिर मानव की आकृति तथा उसकी औसत ऊंचाई दी गई है। उसके नीचे सौर-मंडल के पिंड हैं। तीसरे ग्रह (पृथ्वी) को मानव की ओर ऊपर उठा दिया गया है। सबसे नीचे आरिसिबो दूरबीन की आकृति तथा उसका व्यास दिया गया है।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता की भूमिका

जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी

एक समय था जब पत्रकार ही स्वाधीनता संग्राम के प्रवर्त्तकों में माने जाते थे। श्रीमती ऐनी बीसेंट ने, जो 1917 में अखिल भारतीय कांग्रेस के 17 वें अधिवेशन की अध्यक्ष हुई थीं, अपने से पहले समय के स्वाधीनता आंदोलन का एक इतिहास लिखा था, जिसका नाम था - "हाऊ इंडिया फाट फार फ्रीडम" यानी 'भारत ने किस प्रकार अपनी स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी', इस पुस्तक में बंबई में 1885 में हुए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन की चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा था- "जब हम उन सूचियों को देखते हैं कि कौन लोग उपस्थित थे और उनमें कितने ऐसे हैं जो भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास में अमिट हो गये हैं। प्रतिनिधियों में उल्लेख किया जा सकता है – प्रसिद्ध भारतीय पत्रों के प्रमुख संपादकों का, 'ज्ञान प्रकाश' के, पूना की सार्वजनिक सभा के 'क्वार्टर्ली जर्नल' के, 'मराठा', 'केसरी', 'नव-विभाकर', 'इंडियन मिरर', 'नेशन', 'हिन्दुस्तानी', 'ट्रिब्यून', 'इंडियन यूनियन', 'इंडियन स्पैक्टेटर', 'इन्दु प्रकाश', 'हिंदू' और 'क्रीसेंट' के। कितने नाम चमकते हैं परिचित और सम्मानित।" उस सम्मेलन में कुल 72 प्रतिनिधियों ने भाग लिया था, जिनमें वे लोग जो पत्रकारिता से संबंधित थे इस प्रकार थे बम्बई के 'इंडियन स्पैक्टेटर' के संपादक श्री बहराम जी एम. मालाबारी, पुणे के 'इन्दु प्रकाश' के संपादक श्री एन. जी. चंद्रावरकर, 'ज्ञान प्रकाश' के संपादक रामचंद्र मोरेश्वर साने, 'केसरी' और 'मराठा' के संपादक श्री गोपाल गणेश आगरकर और पुणे की सार्वजनिक सभाके 'क्वार्टर्ली जर्नल' के संपादक श्री सीताराम हरि चिपलूड़कर, मद्रास के 'हिंदू' के संपादक श्री जी. सुब्रामणयम अय्यर और 'हिंदू' के ही उप-संपादक श्री एम. वी. राघवाचारियार, कलकत्ता के 'नव-विभाकर' के संपादक श्री जी.बी. मुकर्जी और 'इंडियन मिरर' के संपादक श्री नोरेंद्र नाथ सेन, इलाहाबाद से 'इंडियन यूनियन' के संपादक श्री जे. घोषाल, लखनऊ से 'हिंदुस्तानी' के संपादक मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा, आगरा से 'नर्सीम' के संपादक बाबू जमनादास, अम्बाला से 'ट्रिब्यून' के संपादक बाबू मुरलीधर और कोयंबटूर से 'क्रीसेंट' के संपादक श्री एस.पी. नरसिंहलू नायडू उन प्रतिनिधियों में थे जो इसलिए आमंत्रित किये गये थे कि वे उन पत्रों के संपादक थे, जो देश में जागृति फैला रहे थे। प्रसिद्ध बंगाली पत्र के संपादक श्री सुरेंद्रनाथ बनर्जी इस अधिवेशन में उपस्थित नहीं हो सके थे, परंतु जब कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ तो वे स्वागताध्यक्ष बने और 1905 के 'बंग-भंग विरोधी आंदोलन तक वे कांग्रेस के प्रमुख नेता रहे।

बात कांग्रेस आंदोलन से पहले की है, जब 1857 का प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम रचा गया तो उसके एक प्रणेता नाना साहब के प्रमुख सलाहकार श्री अजीमुल्ला खां ने यह आवश्यक समझा कि अस्त्र-शस्त्र इकट्ठा करने के साथ-साथ एक समाचार पत्र भी निकाला जाये। उस समय दिल्ली से एक समाचार पत्र निकाला गया 'पयामे आजादी' जिसके संपादक के तौर पर नाम जाता था - बहादुरशाह ज़फ़र के पौत्र बेदार बख्त का। इस पत्र पर एक झण्डा गीत होता था जिसकी पंक्तियां इस प्रकार कही जाती हैं –

आज शहीदों ने तुमको अहले वतन ललकारा।
तोड़ोगुलामीकी जंज़ीरें, बरसाओ अंगारा।।
हिंदू, मुस्लिम, सिक्ख हमारा भाई-भाई प्यारा।
यह है आज़ादी का झण्डा, इसे सलाम हमारा।।

यह फारसी और नागरी दोनों लिपियों में लीथो पर छपता था और योजना थी कि झांसी से इसका एक मराठी संस्करण भी निकाला जाये, पर वह निकल नहीं सका। इस पत्र को इतना खतरनाक माना गया कि 1857 के स्वाधीनता संग्राम के असफल हो जाने के बाद अंग्रेज़ी सैनिकों को जिस किसी के पास इस पत्र की एक भी प्रति मिली, उसे और उसके पूरे परिवार को गोलियों से भून दिया गया। श्री बेदार बख्त को भी गोलियों का शिकार बनाया गया।

उसी समय कलकत्ता के एक हिंदी और बंगला दैनिक 'समाचार सुधावर्षण' ने, जिसके संपादक श्री श्यामसुंदर सेन थे, मुगल बादशाह बहादुरशाह का एक संदेश प्रसारित किया, जिसमें कहा गया कि भारतीयों को अंग्रेज़ों को बाहर निकाल देना चाहिए। श्री श्यामसुंदर सेन पर राजद्रोहात्मक लेख लिखने के लिए कलकत्ता प्रेसीडेंसी कोर्ट में मुकदमा चला। उनके साथ ही दो अन्य फारसी पत्रों पर भी मुकदमा चला। ये थे - 'दूरबीन' तथा 'सुल्तानुल अखबार'। मुकदमा राजद्रोह का था, पर उस समय भारत में राजद्रोह के संबंध में कोई कानून नहीं था और बहादुरशाह वैधानिक रूप से भारत के बादशाह थे, जिनके नाम से ईस्ट इंडिया कंपनी दीवान की हैसियत से शासन चला रही थी। समाचार में किसी की मानहानि नहीं थी इसलिए श्री श्यामसुंदर सेन का अपराध साबित नहीं हुआ और उन्हें छोड़ दिया गया। फिर भी उन्होंने अपने पत्र में विद्रोह के समाचार बराबर छापे।

कलकत्ता की हिंदी पत्रकारिता में 'समाचार सुधावर्षण' के बाद एक प्रसिद्ध नाम आता है 'भारत मित्र' का। उसके प्रेरणा-स्रोत थे श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र, जिन्होंने अप्रैल 1878 में भाषाई पत्रों के नियंत्रण संबंधी कानून के पारित होने के बाद भी श्री छोटूलाल मिश्र से मिलकर एक पत्र निकाला 'भारत-मित्र'। 'समाचार सुधावर्षण' बंद हो चुका था और श्री द्वारकानाथ विद्याभूषण द्वारा संपादित और श्री ईश्वर चंद्र विद्यासागर द्वारा स्थापित 'सोम प्रकाश' भी इस कानून की चपेट में बंद हो चुका था, तब उसी शैली पर हिंदी 'भारत मित्र' एक साप्ताहिक के रूप में प्रकाशित हुआ। बाद में श्री दुर्गा प्रसाद मिश्र ने कलकत्ता से ही 'सार सुधानिधि' और 'उचित वक्ता' जैसे पत्र निकाले। उनकी संपादकीय नीति क्या थी और समाचार पत्रों का जनता के प्रति क्या जवाबदारी थी, इसके बारे में 'सारसुधानिधि' ने लिखा था - 'समाचारपत्रों के प्रचारित और विदित होने का प्रधान और मुख्य कारण यही है कि वह पिष्टपेषण के प्रकरण के स्थान-पूर्ति करने की अपेक्षा देशोपकारक विषयों से विभूषित किया जाये और गवर्नमेंट को अन्यायान्याय से वंचित न रखें और जो बात नीति के विरूद्ध हो उसे गवर्नमेंट के सम्मुख उपस्थित कर देवें, जिससे अन्याय का संचार और बुराई का अंकुर न फैलने पावे।" श्री दुर्गा प्रसाद जी इस स्वाधीनता के परिणामस्वरूप दण्ड भुगतने के लिए भी तैयार थे और यह चाहते थे कि अन्य संपादक भी यही मनोवृत्ति रखें। 12 मई, 1883 को उन्होंने लिखा था - "देशी संपादको, सावधान! कहीं जेल का नाम सुनकर कर्त्तव्य-विमूढ़ मत हो जाना, धर्म की रक्षा करते हुए यदि

गवर्नमेंट को सत्य परामर्श देते हुए जेल जाना पड़े, तो क्या चिंता है। इससे मानहानि नहीं होता है। हाकिमों के जिन अन्याय-आचरणों से गवर्नमेंट पर सर्व-साधारण की अश्रद्धा हो सकती है, उनका प्रतिवाद करने में जेल तो क्या, द्वीपांतरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है।"

हिंदी पत्रकारिता और हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र का ऐसा अमर नाम है जिन्होंने हिन्दी को गद्य शैली ही नहीं दी, हिंदी पत्रों में राष्ट्रीयता भर दी। जब वे 18 वर्ष के ही थे तो उन्होंने काशी से 'कविवचनसुधा' नामक मासिक पत्रिका प्रकाशित की, जिसका आदर्श वाक्य था -

खल-गननसों सज्जन दुखी मति होहिं हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, करदुख बहै॥
बुध तजहिं मत्सर, नारिनर सम होंहिं, जग आनन्द लहै।
तजि आमकविता, सुकविजनको अमृतबानी सब कहै।

सन् 1868 यानी आज से 120 वर्ष पहले वे यह कह रहे थे कि "सत्व निज भारत गहै" यानी भारत स्वतंत्र हो। तब तक राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना नहीं हुई थी और स्वाधीनता का नारा तो बहुत बाद में दिया गया। भारतेंदु हरिश्चंद्र केवल आदर्श वाक्य देकर चुप नहीं रह गये। वे क्या चाहते थे, यह उन्होंने 'कविवचन सुधा' में लिखा भी। उन्होंने लिखा था -- "जिस प्रकार अमरीका उपनिवेशित होकर स्वतंत्र हुआ, वैसे ही भारतवर्ष भी स्वतंत्रता लाभ कर सकता है। परंतु भारतवर्ष में इसके विपरीत बहुत आपत्ति है। 20 करोड़ भारतवासियों को पचास हजार अंग्रेज शासन करते हैं। वे प्रायः शिक्षित और सभ्य हैं परंतु इन्हीं लोगों के अत्याचार से सब भारतवर्षीगण दुखी रहते हैं।" यह उन्होंने 1874 में लिखा था। और उन्होंने अंग्रेजों के द्वारा भारत के आर्थिक शोषण पर भी कड़ी टीका की थी। उन्होंने लिखा -- "हे देशवासियों, इस निद्रा से चौंको। इनके न्याय के भरोसे मत फूले रहो। यह विद्या कुछ काम न आयेगी। यदि तुम हाथ के व्यापार सीखोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा, नहीं तो अंत में यहां का सब धन विलायत चला जायेगा और तुम मुंह बाये रह जाओगे।" ब्रिटिश सरकार भारतेंदु हरिश्चंद्र से कुपित हो गयी। इसके विरोध में 'भारतेंदु जी' ने आनरेरी मजिस्ट्रेटी से त्यागपत्र दे दिया और जमकर अंग्रेजों के खिलाफ लिखा। उनकी दो पत्रिकाओं 'कविवचन सुधा' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' की सौ-सौ प्रतियां सरकार खरीदती थी, वे बंद कर दी गयीं। राजभक्तों से कह दिया गया कि वे इस अखबार को न खरीदें। लेकिन भारतेंदु का लेखन बंद नहीं हुआ। उनकी प्रतिष्ठा और बढ़ गयी। उस समय के अन्य पत्रों ने भारतेंदु का अनुसरण किया, जिसका पता हमें तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिटन के उस भाषण से लगता है जो उन्होंने भाषाई समाचारपत्र विधेयक के पारित होने के दिन 14 अप्रैल, 1878 को दिया था। उनकी व्यवस्थापिका सभा में उस विधेयक पर बोलते हुए पश्चिमोत्तर प्रदेश के लेफ्टीनेंट गवर्नर काल्विन ने, जिनका मुख्यालय इलाहाबाद था, कहा था कि सबसे अधिक आपत्तिजनक पत्र मेरे प्रांत में निकलते हैं जो लोगों को राजद्रोह के लिए भड़काते हैं। चर्चा का समापन करते हुए लार्ड लिटन ने कहा था - 'ऐसा लगता है कि ये समाचार पत्र केवल इसलिए जीवित हैं कि वे राजद्रोहात्मक सिद्धांतों को प्रसारित करें। सरकार तथा उसके यूरोपीय अफसरों के प्रति घृणाा पैदा करें और राज करने वाली जाति तथा भारत के लोगों के बीच विरोध पल्लवित करें। इस प्रकार का लेखन कोई

बहुत ताज़ा नहीं है परंतु हाल ही में विशेष या पिछले तीन या चार वर्षों में इनमें बहुत वृद्धि हुई है ।" वाइसराय महोदय ने जिन पत्रों का नाम लिया था उनमें कलकत्ता का 'सुलभ समाचार' (बंगला), 'आर्यावर्त' (हिंदी) तथा बंबई का 'किरण' और 'शिवाजी' नामक भाषायी पत्र थे । लेकिन उन्हें सबसे अधिक शिकायत हिंदी-उर्दू के अखबार 'मालवा समाचार' से थी । उन्होंने कहा- 'लेकिन सबसे दुस्साहसी राजद्रोह उत्तर भारत के देशी भाषाओं के पत्रों में लिखा जाता है । मराठा राजधानी में से, एक इंदौर से प्रकाशित पत्र 'मालवा' खबर में एक पैराग्राफ इस संबंध में दृष्टव्य है । इसमें एक खबर छापी गयी है कि उसने बंबई में व्यापार और रूपया बाजार को प्रभावित किया है और वह यह है कि नाना साहब रूस की सेना के साथ भारत पर आक्रमण करेंगे और पेशवाओं से उसी तरह के पुराने राज्य जार के संरक्षण में स्थापित करेंगे और सतारा, बड़ौदा, नागपुर, झांसी आदि को सामंतवादी राज्यों के रूप में पेशवा के अधीन पुनर्गठित कर दिया जायेगा ।" अंत में उन्होंने कहा- "मैं समझता हूं कि जो नमूने इसके सामने पेश किये गये हैं, उसके बाद परिषद को यह संतोष हो गया होगा कि देशी भाषाई प्रेस वर्तमान काल में दुष्कर्म को प्रोत्साहन देने की राजद्रोही कला में निष्णात हैं चाहे वह राय के द्वारा हो या तथ्य को प्रकट करके । मुझे विश्वास है कि संसार में कोई सरकार नहीं है जो इसे बर्दाश्त कर ले, कोई सरकार इसे बर्दाश्त नहीं कर सकती कि इस प्रकार की भाषा जो इस देश के भाषाई पत्र इस्तेमाल कर रहे हैं जिससे कि एक अधीन जाति का ज्ञान उसके आग्रह और उसकी भावनाएं उत्तेजित हों और यदि कोई इसे बर्दाश्त करेगी तो वह न्यायोचित नहीं होगा ।"

वाइसराय महोदय की टिप्पणियों का असर यह हुआ कि 'मालवा' अखबार के संपादक को तीन महीने के लिए जेल में बंद कर दिया गया और उनके प्रेस पर इंदौर स्टेट ने कब्जा कर होलकर स्टेट गजट नाम से गज़ट निकालना शुरू किया और वह शक्तिशाली पत्र बंद हो गया । परंतु उस पत्र की लोकप्रियता इतनी हो गयी थी कि पड़ोसी देवास राज्य में "मालवा समाचार" नाम से हिंदी का एक साहित्यिक पत्र काफी अर्से तक चलता रहा । पुणे के 'केसरी' का भारतीय कांग्रेस की स्थापना के सिलसिले में उल्लेख किया जा चुका है । 'केसरी' का प्रकाशन 1881 से प्रारंभ हुआ और 1890 तक श्री चिपलूड़कर उसके संपादक थे । परंतु 1890 में श्री बाल गंगाधर तिलक प्रधान संपादक हो गये और उन्होंने संपादक-पद संभालते ही भारत में ब्रिटिश शासन की तीखी आलोचना करनी शुरू की । जब लार्ड लेंसडाउन भारत के वाइसराय का पद छोड़कर जा रहे थे तो उन्होंने लिखा था – 'हम यह नहीं जानते कि इस लार्ड को किन शब्दों में याद करें । रिपन एक अच्छा वाइसराय था, लिटन एक बुरा वायसराय था परंतु लेंसडाउन न अच्छा है न बुरा, जिसके मानी यह है कि उनके सामने जो कुछ रख दिया जाता था, उस पर वह अपने हस्ताक्षर छाप देते थे । ऐसे अफसर को इस बात का श्रेय कैसे दिया जा सकता है कि उन्होंने भारत की सेवा की । जो कुछ इंगलैंड का भारत मंत्री कहता है, अगर वायसराय को उस पर 'हां' ही कहना है तो इतनी ऊंची तनख्वाह पाने वाला यानी 20 हज़ार रूपये माहवार का वेतन पाने वाला वायसराय रखने की क्या ज़रूरत है । 200 रूपये माहवार वेतन पाने वाला एक क्लर्क भी यह काम अच्छी तरह से कर सकता है । अगर उनकी इच्छा अपने व्यक्तित्व को प्रकट करने की नहीं है तो लार्ड लेंसडाउन जैसे लोग भारत क्यों आते हैं ।" लोकमान्य तिलक को अपने लेखन के कारण अनेक मुकदमों का सामना करना पड़ा । कोल्हापुर महाराज के दीवान बर्वे की आलोचना के कारण 1882 में श्री तिलक और श्री

आगरकर पर मुकदमा चला और उन्हें 101 दिन बंबई जेल में रहना पड़ा। फिर जब चाफेकर बंधुओं ने पुणे में प्लेग नाम पर हुए अत्याचारों के विरोध में श्री रैंड की हत्या कर दीं तो 1897 में 'केसरी' पर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें 18 महीने की कड़ी कैद की सज़ा मिली। 'मोदव्रत' के संपादक को पांच महीने की सादी कैद और 'प्रतोद' के संपादक को काले पानी की सज़ा मिली, पर उच्च न्यायालय ने घटाकर एक साल कर दी। 1908 में लोकमान्य तिलक पर बंगाल के आतंकवाद का समर्थन करने के आरोप में फिर राजद्रोह का मुकदमा चला और उन्हें छह वर्ष के काले पानी की सज़ा देकर माण्डले भेज दिया गया। नागपुर से श्री माधवराव सप्रे के संपादकत्व में हिंदी 'केसरी' निकला। श्री सप्रे को जेल में बंद कर दिया गया और हिंदी 'केसरी' का प्रकाशन बंद हो गया।

सन् 1877 में इलाहाबाद से श्री बालकृष्ण भट्ट के संपादन में 'हिंदी प्रदीप' निकला था, जिसमें लेफ्टीनेंट गवर्नर काल्विन की खासी मरम्मत होती थी। यह पत्र सरकार को खटकता था और 1910 के प्रेस ऐक्ट के तहत इससे तीन हज़ार रूपये की ज़मानत मांगकर बंद कर दिया गया। यह वह पत्र था जो 1 रूपये 11 आने में अपने पाठकों को वर्ष में बारह अंक देता था। वह पत्र तीन हज़ार रूपये की ज़मानत कहां से देता। इलाहाबाद के जिन तीन समाचारपत्रों को बंद करने पर अंग्रेज सरकार ने बडा उत्साह दिखाया और प्रसन्नता प्रकट की, वे थे - 'हिंदी प्रदीप', इलाहाबाद का ही पंडित सुंदरलाल द्वारा प्रकाशित 'कर्मयोगी' और 'स्वराज्य'।

'कर्मयोगी' का प्रकाशन लोकमान्य तिलक के 'केसरी' और श्री अरविंद घोष के 'कर्मयोगिन' के आधार पर हुआ था और इन पत्रों के लेख भी अनुवादित होकर 'कमयोगी' में छपते थे। 'कर्मयोगी' कार्यालय चौक गंगादास नामक मोहल्ले में स्थित था और वहां कौन आता जाता है, इसकी देखभाल के लिए खुफिया पुलिस के लोग बराबर तैनात रहते थे। 'कर्मयोगी' की ग्राहक संख्या दस हज़ार तक पहुंच गयी थी और उसके लेखक बड़े योग्य व्यक्ति होते थे।

पंडित सुंदरलाल ने बाद में 'भविष्य' निकाला। जिसने सन् 1920 में 'असहयोग आंदोलन' से लेकर सन् 1931 से 1933 तक के 'सविनय अवज्ञा आंदोलन' को प्रचारित करने में बड़ी भूमिका निभायी।

जब लार्ड कर्जन भारत के वायसराय होकर आये और उन्होंने भारतीयों की बुराई करनी शुरू की तथा सन् 1905 में 'बंग-भंग' कर बंगाल में अशांति फैला दी, उस समय 'भारत मित्र' के संपादक श्री बालमुकुंद गुप्त ने अपने शिव शंभु के चिट्ठे में लार्ड कर्ज़न पर प्रति सप्ताह बड़ी विकट.चोट की। कहा जाता है कि लार्ड कर्ज़न उस लेख का अनुवाद अंग्रेजी में कराकर पढ़ते थे। एक बार उन्होंने लिखा - 'आप माई लार्ड, जबसे भारतवर्ष में पधारे हैं, बुलबुलों का स्वप्न ही देखा है या सचमुच कुछ करने के योग्य काम भी किया है, खाली अपना ख्याल ही पूरा किया है या यहां की प्रजा के लिए कुछ कर्त्तव्य पालन भी किया। -- आप बारंबार अपने दो अति तुमतुराक से भरे कामों का वर्णन करते हैं। एक विक्टोरिया मेमोरियल हाल और दूसरा 'दिल्ली दरबार' पर ज़रा सोचिए तो यह दोनों काम 'शो' हुए या 'ड्यूटी'? विक्टोरिया मेमोरियल हाल चंद पेट-भरे अमीरों के एक दो बार देख आने की चीज होगा। इससे दरिद्रों का कुछ दुख घट जावेगा या भारतीय प्रजा की कुछ दशा उन्नत हो जावेगी, ऐसा तो आप भी न समझते होंगे --? कलकत्ता विश्वविद्यालय के अपने भाषण में कर्ज़न ने पूरब के लोगों को मिथ्यावादी

तथा सत्य का अनादर करने वाला कहा था। जिस स्वदेश को श्रीमान ने आदर्श सत्य का देश कहा और वहां के लोगों को सत्यवादी कहा है, उसका आला नमूना क्या श्रीमान् ही हैं।

'यह देश भी यदि विलायत की भांति स्वाधीन होता और यहां के लोग ही यहां के राजा होते तब यदि अपने देश के लोगों को यहां के लोगों से अधिक सच्चा साबित कर सकते तो आपकी अवश्य कुछ बहादुरी होती। स्मरण रखिए उन दिनों को जब अंग्रेजों के देश पर विदेशियों का अधिकार था । उस समय आपके स्वदेशियों की नैतिक दशा कैसी थी, उसका विचार तो कीजिए। यह वह देश है कि हज़ार साल पराए पांव के नीचे रह कर भी एक दम सत्यता से च्युत नहीं हुआ है। यदि आपका यूरोप या इंगलैण्ड दस साल भी पराधीन हो जाते तो आपको मालूम पड़े कि श्रीमान के स्वदेशीय कैसे सत्यवादी और नीति-परायण हैं।"

सन् 1905 के बंग-भंग विरोधी आंदोलन को समाचारपत्रों से बड़ा बल मिला। स्वदेशी और विदेशी वस्त्रों के बायकाट आंदोलनों में 'बंदेमातरम्' शब्द युद्धनाद बन गया। 6 अगस्त, 1906 को कलकत्ता में श्री सुबोधचंद्र मलिक और देशबंधु चित्तरंजनदास ने 'बंदेमातरम्' पत्र का बंगला में प्रकाशन किया और श्री अरविंद घोष को उसका संपादक बनाया। लेकिन संपादक के स्थान पर किसी का नाम नहीं जाता था। सरकार ने उस पत्र के लेखों और अग्रलेखों को आपत्तिजनक मानकर श्री अरविंद घोष पर मुकदमा चलाया और यह गवाही देने के लिए श्री अरविंद घोष ही पत्र के संपादक, श्री विपिन चंद्र पाल को तलब किया। श्री विपिनचंद्र पाल ने श्री अरविंद घोष के विरूद्ध गवाही देने से इंकार किया और दोनों को सज़ा हुई। इस घटना के बाद श्री विपिनचंद्र पाल बंगाल में और लोकप्रिय हो गये और देश में एक समय ऐसा आया जबकि 'लाल-बाल-पाल' की तिकड़ी से अंग्रेज़ बहुत भय खाते थे। यह ध्यान में रखने की बात है कि 1907 में कांग्रेस में फूट होने के बाद कांग्रेस संगठन निष्क्रिय हो गया था और ये तीनों नेता श्री बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और बिपिनचंद्र पाल किसी संगठन के माध्यम से राष्ट्रीयता का प्रचार नहीं कर रहे थे, उनका माध्यम था उनके समाचारपत्र। लोकमान्य तिलक 'केसरी' और 'मराठा' के द्वारा अपने विचार प्रकट करते थे। श्री बिपिनचंद्र पाल ने सन् 1904 में कलकत्ता से 'न्यू इंडिया' पत्र निकाला और अंग्रेज लेखक मिस्टर कर ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल ट्रबल इन इंडिया 1907-1917' में लिखा कि 'न्यू इंडिया' के इन उद्‌बोधक लेखों ने स्वराज्य की मांग को बढ़ाने में बड़ा योगदान दिया।

श्री अरविंद घोष के भाई प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री बारीन्द्र कुमार घोष स्वामी विवेकानंद के भाई और बाद में जर्मनी में तथा रूस में प्रसिद्ध भारतीय क्रांतिकारी श्री भूपेंद्रनाथ दत्त ने 1906 में 'युगान्तर' नामक पत्र प्रकाशित किया। इसके बारे में अंग्रेजों का ख्याल था कि यह कलकत्ता में प्रकाशित क्रांतिकारियों का सबसे अधिक प्रभाव वाला पत्र था। अनेकों बार इस पत्र के संपादकों पर मुकदम चले, सज़ाएं हुई परंतु पत्र ने इतना प्रभाव छोड़ा कि जब लाला हरदयाल ने 1913 में से फ्रांसिस्को अमेरीका में 'गदर पार्टी' का कार्यालय स्थापित किया तो उसका नाम 'युगान्तर आश्रम' रखा। मदाम कामा ने पेरिस में लाला हरदयाल के सहयोग से जो प्रवासी क्रांतिकारियों का पत्र निकाला उसका नाम 'बंदेमातरम्' रखा गया था। खुद गदर पार्टी का अखबार 'गदर' हिंदी, उर्दू, पंजाबी, गुजराती और मराठी तथा अंग्रेजी में निकला और उसकी लाखों प्रतियां संसार में वितरित होती थीं। रालेट कमेटी ने अंग्रेजों के विरूद्ध भारतीयों में घृणा पैदा करने के लिए गदर तथा अन्य क्रांतिकारी पत्रों का अनेक बार उल्लेख किया है।

'युगान्तर' पत्र को 1908 के समाचारपत्र अधिनियम के अंतर्गत बंद करने के लिए उसके प्रेस को ज़ब्त करने का आदेश दिया गया। लेकिन फिर वही सामग्री छोटी-छोटी समाचार पत्रिकाओं के नाम से लगातार निकलती रही। संध्या पत्र के संपादक ब्रह्मबांधव उपाध्याय के विरूद्ध राजद्रोह का मुक़दमा चला, परंतु इससे पूर्व उन्हें सज़ा सुनायी जा सके, उन्होंने अपनी देह छोड़ दी, जैसा कि उन्होंने अपने वकील श्री चितरंजन दास से कई दिन पहले कह दिया था कि अदालत मुझे सज़ा नहीं दे सकती। मैं उन्हें अपना ठेंगा दिखाऊंगा। लाला लाजपतराय ने पीपुल' नाम का समाचार पत्र निकाला और यह समझा जाता था कि उर्दू के जो भी क्रांतिकारी पत्र निकल रहे थे, चाहे सूफ़ी अम्बाप्रसाद का 'हिंदोस्तान' हो, श्री अजीत सिंह का 'भारत माता', श्री रामचन्द्र पेशावरी का 'आकाश' या इलाहाबाद का 'स्वराज्य', सभी को लाला लाजपत राय की सहायता और परामर्श मिलाता था। यह बात अवश्य थी कि लाला लाजपत राय पंजाब में आर्य समाज के नेता थे और जितने अग्रगामी विचार वाले उर्दू पत्र थे, सभी के संपादक आर्य समाज से संबंधित रहे थे। पंडित सुंदरलाल भी डी.ए.वी. कालेज लाहौर से शिक्षा प्राप्त कर लौटे थे। जब लोकमान्य तिलक को जेल भेज दिया गया तो 'केसरी' से पांच हज़ार रुपये की ज़मानत मांगी गयी जो जमा कर दी गयी और वह पत्र चलता रहा। लेकिन अनेकों मराठी पत्रों से अंग्रेजी शासन ने ज़मानतें मांगी और वे ज़मानत नहीं दे सके तो बंद कर दिये गये। ऐसे थे - पूना का 'काल', जिसके संपादक श्री एस.एम. परांजपे पर राजद्रोहात्मक लेख लिखने के लिए मुकदमा भी चलाया गया और पांच हज़ार रुपये की ज़मानत मांगी गयी। बंबई के राष्ट्रमत' पत्र से भी पांच हज़ार रुपये की ज़मानत मांगी गयी जो नहीं जमा की गयी और ये दोनों पत्र बंद हो गये। सूरत के गुजराती पत्र 'शक्ति' और अहमदाबाद के 'राजस्थान' से पांच हजार रुपये और एक हज़ार रूपये की ज़मानतें ब्रिटिश शासन ने मांगी। लेकिन जो पत्र ज़मानत नहीं दे सके, बंद हो गये।

लेकिन इन सब समाचार पत्रों में इलाहाबाद का उर्दू साप्ताहिक 'स्वराज्य' अपनी अलग ही विशेषता रखता है। तीन वर्ष के अंदर इस पत्र के आठ संपादकों को बारी-बारी से राजद्रोह के अपराध में जेल भेजा गया और फिर जब इसके बाद भी पत्र बंद होने की नौबत नहीं आयी तो 1910 के प्रेस ऐक्ट में अंग्रेजों ने 9 हज़ार रुपये की ज़मानत मांगकर इस प्रेस को और पत्र को बंद कर दिया। इस पत्र के बारे में रॉलेट कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था - "नवंबर 1907 में 'स्वराज्य' नाम से इलाहाबाद से एक पत्र निकला। यहीं से पहले यहल इस शांतिपूर्ण प्रांत में क्रांतिकारी प्रचार का तथा प्रयास का सूत्रपात होता है। इसके परिचालक श्री शांति नारायण थे, जो पहले पंजाब के किसी अख़बार के संपादक थे। इस अख़बार का स्वर शुरू से ही ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध था। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे यह और भी गरम होता गया। श्री शांति नारायण भटनागर ने अपनी पत्नी के गहने बेचकर इस पत्र की स्थापना की थी। खुदीराम बोस की फांसी पर एक कविता प्रकाशित करने के अपराध में श्री भटनागर को साढ़े तीन वर्ष की कैद और एक हज़ार रूपये जुर्माने का दण्ड दिया गया और जुर्माना न देने पर छह महीने और सज़ा दी गयी। जुर्माना नहीं दिया गया था इसलिए प्रेस भी नीलाम कर दिया गया। श्री भटनागर के उत्तराधिकारी श्री रामदास सुरालिया फ़रार हो गये और उन्होंने नया प्रेस लगाकर श्री होतीलाल वर्मा को संपादक बनाया। वे पहले रांची के एक 'आर्य' पत्र के संपादक थे। जब वे अलीगढ़ गये हुए थे तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें पांच-पांच वर्ष की सजा दी गयी। उच्च

न्यायालय ने उनकी सजा सात साल के काले पानी की कर दी। उसके बाद उनके उत्तराधिकारी श्री राम हरि को भी अण्डमान भेजा गया। उनका अपराध यह था कि उन्होंने 1857 के विद्रोह पर विशेषांक निकाला था और एक कविता छापी थी कि मातृभूमि तेरे दुख के दिन दूर होने वाले हैं। उन्हें 21 साल काले पानी की सजा हुई। उनके स्थान पर जब लाहौर के 'सहायक' पत्र के संपादक मुंशी रामसेवक इलाहाबाद आये और मजिस्ट्रेट के सामने डिक्लेरेशन देने पहुंचे तो लाहौर के एक वारंट पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और मजिस्ट्रेट ने उनसे पूछा कि अब तख्ते मुगलिया पर कौन बैठेगा यानी अंग्रेज लोग स्वराज्य के संपादक की कुर्सी को मुगल बादशाहों के तख्त की तरह महत्वपूर्ण मानते थे। लेकिन उनके बाद संपादक हुए श्री नंदगोपाल चोपड़ा, उनको भी कुछ दिनों बाद तीस साल काले पानी में रहने की सज़ा सुनायी गयी। फिर श्री लद्धाराम कपूर, जो दक्षिण-पूर्व एशिया से धन कमाकर लौटे थे उनका विवाह भी हाल ही में हुआ था। लेकिन इलाहाबाद का समाचार जानकर उन्होंने अपनी पत्नी से कहा- "तुमसे इश्क तो बहुत है, पर देश हमें पुकार रहा है।" वे बहुत बडे उर्दू के शायर थे और स्वाधीनता के बाद दिल्ली की एक गली में उनका अंत बहुत ही विपन्नता में हुआ। लेकिन उस समय एक अंग्रेज ने एक भारतीय महिला के साथ बलात्कार किया था। श्री लद्धाराम ने इसका जिक्र करते हुए लिखा कि हर भारतीय को समझना चाहिए कि उसकी बहन के साथ बलात्कार हुआ है। वे पकडे गये और उन्हें तीस साल की काले पानी की सज़ा दी गयी। अंडमान में अत्याचारों का विरोध करने के कारण उनकी सज़ा छह महीने के लिए और बढ़ा दी गयी। श्री लद्धाराम ने जेल जाने से पहले अपने पत्र में एक विज्ञापन छपवाया था जो इस प्रकार था - "चाहिए 'स्वराज्य' के लिए एक संपादक। वेतन दो सूखी रोटियां, एक गिलास ठंडा पानी और हर संपादकीय के लिए दस साल जेल।" इस विज्ञापन के जवाब में तीन व्यक्तियों ने आवेदन किया। उनमें एक थे लाहौर के महाशय खुशहाल चंद खुरसंद, जिन्होंने 'मिलाप' पत्र निकाला। दूसरे थे, आफताब और आकाश के संपादक पेशावर के श्री रामचंद्र भारद्वाज, जो बाद में सानफ्रांसिस्को पहुंच गये थे और जिन्होंने गदर पार्टी के 'गदर' पत्र का संपादन किया था। और तीसरे थे पेशावर के ही श्री अमीरचंद बमवाल। बाद में वही संपादक हुए। जब वे संपादक हुए तो उनसे दो हज़ार रूपये ज़मानत मांगी गयी। जब किसी तरह चंदा करके ज़मानत दे दी गयी तो उनसे मुचलके की मांग हुई और उन्हें 25 दिसंबर, सन् 1910 को अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया और 9 हजार रुपये की जमानत मांगकर 'स्वराज्य' को बंद कर दिया गया।

कलकत्ता के 'कर्मयोगिन' और 'धर्म' से दो-दो हज़ार रुपये की ज़मानतें मांगी गयीं और न देने पर ये पत्र भी बंद हो गये। पंजाब के 'मुजाहिद' और नागपुर के 'देश सेवक' का यही हाल हुआ। सीमा प्रांत में डेरा इस्माइल खां के 'फ्रंटियर एडवोकेट' से चार हज़ार रुपये की ज़मानत मांगी गयी, जो नहीं दी जा सकी और वह पत्र भी बंद हो गया। इस प्रकार 1910 के प्रेस कानून के लागू होने पर 11 पत्र एक वर्ष के अंदर अंग्रेजों ने बंद कर दिये थे। यह था ब्रिटिश साम्राज्यवाद में स्वतंत्र अभिव्यक्ति का दमन।

सन् 1911 में ब्रिटिश सरकार की इस घोषणा के बाद कि बंगाल का विभाजन रद्द किया जाता है, बंगाल का आंदोलन शांत हो गया। लेकिन क्रांतिकारी विचारधारा चलती रही और जिन समाचारपत्रों ने इस विचारधारा को पल्लवित किया, उनके ऊपर सरकार की हमेशा टेढ़ी नज़र रही। इस दृष्टि से इस समय का सबसे महत्वपूर्ण पत्र था कानपुर का 'साप्ताहिक प्रताप' जो श्री

गणेशशंकर विद्यार्थी ने नवंबर, 1913 में स्थापित किया। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी अपना पत्र स्थापित करने से पहले प्रयाग के साप्ताहिक 'अभ्युदय' में काम कर चुके थे और 'कर्मयोगी' तथा 'स्वराज्य' में भी उन्होंने टिप्पणियां लिखी थीं। श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ उन्होंने 'सरस्वती' में सहायक संपादक का कार्य किया था परंतु उनकी तेजस्वी पत्रकारिता के लिए यह स्थान उपयुक्त नहीं जचे। श्री गणेशशाकर विद्यार्थी ने 9 नवंबर, 1913 देवोत्थान एकादशी संवत् 1970 को प्रताप के प्रथम अग्रलेख में अपनी नीति घोषित करते हुए कहा - "हम अपने देश और समाज की सेवा के पवित्र काम का भार अपने ऊपर लेते हैं। हम अपने भाइयों और बहनों को उनके कर्त्तव्य और अधिकार समझाने का यथाशक्ति प्रयत्न करेंगे। राजा और प्रजा में, एक जाति और दूसरी जाति में, एक संस्था और दूसरी संस्था में वैर और विरोध, अशांति और असंतोष न होने देना हम अपना परम कर्त्तव्य समझेंगे। हम अपने देशवासियों को उन सब अधिकारों का पूरा हकदार समझते हैं जिनका हकदार संसार का कोई भी देश हो सकता है। उन्होंने अपना अग्रलेख समाप्त करते हुए लिखा था - "मनुष्य की उन्नति भी सत्य की जीत के साथ बंधी है, इसीलिए सत्य को दबाना हम महापाप समझेंगे और उसके प्रचार और प्रकाश को महा पुण्य। हम जानते हैं कि हमें इस काम में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा और इसके लिए बड़े भारी साहस और आत्म-बल की आवश्यकता है। हमें यह भी अच्छी तरह मालूम है कि हमारा जन्म निर्बलता, पराधीनता और अल्पवीयता के वायुमण्डल में हुआ है, तो भी हमारे हृदय में केवल सत्य की सेवा करने के लिए आगे बढ़ने की इच्छा है। हमें अपने उद्देश्य की सच्चाई और अच्छाई पर अटल विश्वास है। इसीलिए हमें, अंत में इस शुभ और कठिन कार्य में सफलाता मिलने की आशा है।"

श्री गणेशशंकर विद्यार्थी को 'प्रताप' का संपादक भर मानना भूल होगी। यहां हम अमर शहीद श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की चर्चा नहीं कर रहे, जो सांप्रदायिक सद्भाव लाने के प्रयास में शहीद हो गये। हमारा तात्पर्य पत्रकार श्री गणेशशंकर विद्यार्थी से है जिन्होंने अपने जैसे अनेक तेजस्वी पत्रकार उत्पन्न किये और उत्तर भारत में स्वतंत्र पत्रों की एक श्रृंखला ही बना दी। जिनका उद्देश्य भारत को स्वाधीन करना ही था, ऐसे पत्र और पत्रकार थे - 'प्रताप' के ही पंडित बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और श्री रमाशंकर अवस्थी, जिन्होंने 'वर्तमान' निकाला। पं श्री कृष्णदत्त पालीवाल, जिन्होंने आगरा से 'सैनिक' का प्रकाशन किया। गोरखपुर से 'स्वदेश' का संपादन करने वाले श्री दशरथ प्रसाद द्विवेदी और पटना से 'नवशक्ति' तथा 'राष्ट्रवाणी' और 'दैनिक नवराष्ट्र' संपादित तथा प्रकाशित करने वाले श्री देवव्रत शास्त्री। इनमें से प्रत्येक पत्र और पत्रकार ने अपनी कलम के ज़ोर से भारतीय स्वाधीनता संग्राम को प्रदीप्त किया और जेल गये, भारी भारी ज़मानतें दीं। लेकिन श्री गणेश शंकर विद्यार्थी ने जितना लंबा संघर्ष किया, उसका उदाहरण तो बहुत कठिन है।

जनवरी, 1915 में 'प्रताप' का राष्ट्रीय अंक निकला, जिसके लिए उन्होंने श्री मैथिलीशरण गुप्त से अफ्रीका में सत्याग्रह करते हुए महात्मा गांधी के नाम एक कविता लिखवायी, जिसका शीर्षक था - 'अफ्रीका प्रवासी भारतवासी'। उन दिनों मेवाड़ राज्य में बिजौलिया जागीर में श्री विजय सिंह पथिक का सत्याग्रह चल रहा था। उनके आग्रह पर गणेश जी ने 'प्रताप' में जागीरदारों के अत्याचारों के समाचार छापे, जिसके बाद 'प्रताप' का मेवाड़

समय श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर ने प्रथम अंक में जो अग्रलेख लिखा था, उसका कुछ अंश इस प्रकार है – 'आज' की जो नीति निर्धारित की गयी है, उससे स्वर्गवासी लोकमान्य तिलक की पूर्ण सहानुभूति थी। लोकमान्य का दर्शन करने तथा पत्र की नीति के संबंध में आपके उपदेश लेने के लिए इसका लेखक गत और ज्येष्ठ मास के अंत में पूना गया था। उस समय 'आज' की नीति के संबंध में आपसे बहुत कुछ बातें हुई थीं। लोकमान्य का सबसे प्रधान उपदेश यही था कि स्वराज्य प्राप्त करने का प्रयत्न करो, लोगों को उनके स्वाभाविक अधिकार समझा दो तथा धर्मतः कर्त्तव्य पालन करते हुए भी यदि विघ्न उपस्थित हो, तो उनकी परवाह मत करो ईश्वर के न्याय पर विश्वास रखो। इसी उपदेश का पालन करना हमारे जीवन का उद्देश्य होगा।' 'आज' बराबर इस परंपरा पर कायम रहा। श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर संपादक होने से पूर्व क्रांतिकारी कार्यो के लिए बंगाल में नजरबंद रह चुके थे। वाराणसी में भी उनके घर पर और कार्यालय पर सी· आई· डी· का पीछा रहता था, जो यह पता लगाता था कि वो कब घर रहते हैं, कब कार्यालय जाते हैं और कब लौटते हैं और उनके घर पर क्या कोई आता-जाता है। यह सही है यद्यपि 'आज' का संपादक होने के नाते श्री पराडकर ने क्रांतिकारी गतिविधियों में उस तरह हिस्सा नहीं लिया जिस तरह उन्होंने कलकत्ता में 'हितवार्ता' और 'भारतमित्र' संपादकीय कार्य करते लिया था। परंतु उनकी सहानुभूति क्रांतिकारियों के साथ थी, जिन्हें उनसे शरण और सहायता प्राप्त होती थी। पराड़कर जी स्वयं असहयोग आंदोलन से सहमत नहीं थे लेकिन उनके पत्र ने उसका कसकर समर्थन किया। पराड़कर जी को राजद्रोहात्मक लेख लिखने के लिए डेढ़ वर्ष की सज़ा भी हुई और 'आज' से अनेक बार ज़मानतें मांगी गयीं।

उसके 18 नवंबर 1930 के अंक में पुलिस द्वारा विदेशी कपड़ों के बहिष्कार करने वाले स्वयंसेवकों पर अत्याचार के विवरण को आपत्तिजनक माना गया। उसी तरह इलाहाबाद के 'अभ्युदय' द्वारा 8 मई, 1931 को भगत सिंह अंक प्रकाशित करने पर आपत्ति की गयी। 14 जून, 1931 के झांसी से प्रकाशित 'किसान मज़दूर' पत्र में 'माता की वेदना' नाम से प्रकाशित कविता आपत्तिजनक मानी गयी और मुरादाबाद में 'साप्ताहिक विजय' पर पंडित रामप्रसाद बिसमिल की यह कविता आपत्तिजनक मानी गयी जिसमें लिखा था –

शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।

दिल्ली में एक और ही विचित्र काण्ड हुआ। श्री रामचंद्र शर्मा ने 'महारथी' पत्र निकाला और यह पत्र बहुत थोड़े समय में लोकप्रिय हो गया। इसमें राष्ट्रीय कविताएं तो छपती ही थीं, संपादकीय भी बहुत दमदार होते थे। लाला लाजपत राय पर साइमन कमीशन का विरोध करने के लिए जब लाठी चली तो इस पत्र में एक कविता भी छपी। वह कविता इस प्रकार थी:

चढ़ रहा है हर जुबां पर अब जुनूने लाजपत।
कोई क्या तूफान लायेगा ये खूने लाजपत।
हो रहे हैं जर्द चेहरे आज क्यों हुक्काम के।
सुर्ख होने चाहिए थे पीके खूने लाजपत।

लाला लाजपत राय के शहीद हो जाने पर इसका दिसंबर 1928 का अंक केसरिया कागज पर निकाला गया, जिस पर लाल सियाही से सौ पृष्ठ छापे गये थे और उस अंक को पंडित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुई कलकत्ता कांग्रेस में वितरित किया गया था। उसके अग्रलेख में लिखा गया था - "हम यह बात बलपूर्वक कह सकते हैं यदि कभी देश में फ्रांस जैसी क्रांति का उदय हुआ तो देश के आराम तलब शासक सर्व प्रथम प्राणदण्ड के अधिकारी होंगे। अतः आओ एक बार अपना ध्येय प्राप्त कर लें या सदा के लिए माता की गोद सूनी बना दें। अनेक गऊए मिलकर एक शेर को मार सकती हैं। भारत के नवयुवकों क्या माता का दूध सार्थक न करोगे।' इस पत्र के संपादक श्री रामचंद्र शर्मा को 20 नवंबर, 1930 के अंक में लिखे एक लेख के कारण जेल भेज दिया गया था। शर्मा जी को बाद में 'महारथी' के नाम से पुकारा जाने लगा। उन्होंने दैनिक पत्र के प्रकाशन के लिए डिक्लेरेशन भरा था परंतु ज़िला मजिस्ट्रेट ने डिक्लेरेशन नही लिया। इस पर भी वे आठ महीने तक दैनिक पत्र निकालते रहे, जिसकी हज़ार-हज़ार प्रतियाँ इंदौर जैसे दूरस्थ नगर में बिकती थीं।

जब समाचारपत्र बंद हो जाते थे या प्रेस पर ताला लग जाता था जैसा सन् 1942 में 'नेशनल हेराल्ड' लखनऊ, 'सैनिक' आगरा, और 'आज' वाराणसी के साथ हुआ तो उस समय राष्ट्रीय समाचारों को देने के लिए हस्तलिखित पत्र निकलते थे। 1931 से 1933 के बीच में यद्यपि 'आज' बंद नहीं हुआ था, पर उसने अग्रलेख छापना बंद कर दिया था। उन दिनों काशी से एक पत्र निकला 'शंखनाद'। सरकार को यह ख्याल हुआ कि यह पत्र 'आज' कार्यालय से ही निकलता है इसलिए एक दिन पुलिस के सिपाहियों ने 'आज' प्रेस में कंपोजीटरों को घेर लिया और कहा कि वे कोई चीज कंपोज़ न करें। कंपोज़ीटरों ने कहा कि ऐसा वे तभी करेंगे जब उनके व्यवस्थापक यह आदेश दें। तब तक पराडकर जी कार्यालय में आ गये। पराड़कर जी ने कहा कि तुम छपाई नहीं रोक सकते हो तुम्हें तलाशी लेनी हो तो लो, नहीं तो चले जाओ। तलाशी में कुछ नहीं मिला तब 'आज' से ज़मानत मांगी गयी तो 'आज' को अंग्रेजों ने बंद कर दिया। फिर 'आज का समाचार' नाम से दूसरा पत्र निकला, उससे भी ज़मानत मांगी गयी और वह भी बंद करना पड़ा। 19 जून, 1931 में पराड़कर जी को राजद्रोह के मामले में गिरफ्तार किया गया और छह महीने की सज़ा और एक हज़ार रुपये जुर्माना किया गया। पराड़कर जी ने जुर्माना न देकर अतिरिक्त जेल काटी। सन् 1942 में गांधी जी के भारत छोड़ो आंदोलन के सिलसिले में 'आज' फिर बंद हुआ। उस समय एक हस्तलिखित पत्रिका 'रणभेरी' के नाम से निकलती थी, जो साइक्लोस्टाइल होकर बंटती थी, उसे लिखते पराडकर जी ही थे। जब पता लगता कि पुलिस आ रही है तो साइक्लोस्टाइल मशीन पोटली बनाकर इधर से उधर लेजाई जाती। लेकिन पकड़ी नही गयी।

कलकत्ते का 'मतवाला' भी अंग्रेजों के कोप का कई बार शिकार हुआ। उसके संचालक श्री महादेव प्रसाद सेठ और संपादक श्री नवजादिक लाल श्रीवास्तव आपत्तिजनक सामग्री के प्रकाशन के अपराध में पकड़े गये जिसके परिणामस्वरूप कुछ दिनों बाद पत्र बंद करना पड़ा। कलकत्ता के 'हिंदू मंच' ने एक बलिदान अंक निकाला, जिसमें श्री छैलबिहारी दीक्षित कंटक की एक कविता 'बलिदान' छपी। वह अंक ज़ब्त कर लिया गया और श्री कंटक को गिरफ्तार कर कई वर्ष की सज़ा सुना दी गयी।

स्वाधीन चेता पत्रों में मध्यप्रदेश का 'कर्मवीर' और राजस्थान का 'नया राजस्थान' या 'तरुण राजस्थान' भी सरकार के कोप के अनेक बार शिकार हुए। 'कर्मवीर' की स्थापना श्री माधवराव सप्रे ने कराई थी और श्री माखनलाल चतुर्वेदी को उसका संपादक बनाया गया। माखनलाल जी बाद में 'कर्मवीर' को जबलपुर से खण्डवा ले आये। जब जब राष्ट्रीय आंदोलन प्रबल हुआ 'कर्मवीर' अपने अग्रलेखों और माखनलाल जी की राष्ट्रीय कविताओं से स्वाधीनता संग्राम को प्रज्ज्वलित करता रहा। 'प्रभा' के माध्यम से जो 1913 से निकली थी, मध्यप्रदेश में साहित्यिक जागृति आयी। श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र ने भी 'लोकमत' और 'सारथी' जैसे पत्रों के माध्यम से मध्यप्रदेश के पिछड़े क्षेत्र में राष्ट्रीयता का संदेश फैलाया। 'स्वराज्य' के संपादक श्री सिद्धनाथ माधव आगरकर पहले 'कर्मवीर' के ही संपादनमण्डल में थे। 'कर्मवीर' ने 'प्रताप' की ही भांति हिंदी को अनेक सम्पादक दिये. जिनमें श्री आगरकर के अतिरिक्त श्री मुकुटबिहारी वर्मा और श्री शंकर लाल प्रमुख हैं। श्री मुकुटबिहारी वर्मा जब 'त्यागभूमि' में थे तब उन्हें कारावास भी मिला, जेल से छूटने के बाद वे दिल्ली के 'वीर अर्जुन' में आ गये थे और बाद में दैनिक 'हिंदुस्तान' के संपादक बन गये। बनारस के 'आज' तथा 'हंस' कलकत्ता के 'मतवाला' तथा माखनलाल जी के 'कर्मबीर' पत्रों के साथ अनेक हिंदी के प्रसिद्ध और नवोदित लेखकों की कई पीढ़ियां जुड़ी रही थीं।

इस प्रकार भारत के स्वाधीनता संग्राम का एक बड़ा गौरवपूर्ण भाग समाचारपत्रों द्वारा राष्ट्रीयता के लिए किया गया आंदोलन और उन पर किया गया दमन प्रारंभ से ही प्रमुख राष्ट्रीय नेता किसी न किसी पत्र से जुड़े हुए थे। जिनका हम ज़िक्र कर चुके हैं, उनके अलावा श्री मदनमोहन मालवीय ने न केवल कालाकांकर के 'दैनिक हिंदोस्थान' का संपादन किया बल्कि 'अभ्युदय' और 'मर्यादा' जैसे हिंदी पत्र निकाले। जिनसे श्री पुरुषोत्तम दास टण्डन, श्री कृष्णकांत मालवीय और श्री संपूर्णानंद संबद्ध रहे। मालवीय जी ने 'दैनिक लीडर' की भी स्थापना की थी और बाद में दिल्ली के हिंदुस्तान टाइम्स को प्राप्त कर उसे राष्ट्रीय पत्र बनाया। श्री मुरलीमनोहर प्रसाद के संपादकत्व में बाबू राजेंद्र प्रसाद ने बिहार को 'सर्चलाइट' जैसा पत्र प्रदान किया। नागपुर का 'हितवाद' और पुणे का 'ज्ञान प्रकाश' श्री गोपालकृष्ण गोखले द्वारा स्थापित 'सर्वेंट्स आफ इंडिया सोसाइटी' के पत्र थे। श्री फिरोज़शाह मेहता ने 'बांबे क्रोनिकल' की स्थापना की थी। इस प्रकार राष्ट्रीय आंदोलन और समाचार पत्र एक ही दिशा में दो समानांतर प्रयास थे और बहुत से ऐसे व्यक्तित्व थे जो दोनों माध्यमों से भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए प्रयास करते रहे। इसी उद्देश्य से श्री जवाहरलाल नेहरु ने 1938 में 'नेशनल हेराल्ड' की स्थापना की थी। 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के समय यह पत्र तीन वर्ष तक बंद रहा था। यही आगरा के 'सैनिक' के साथ हुआ। जिसे पहले विनोबा भावे का समाचार देने के लिए 1941 में और फिर 1942 में बंद किया गया। आज उन पत्रों में से बहुत से नहीं हैं। किंतु यह सही है कि भारत को स्वाधीनता दिलाने में और हिंदी भारतीय पत्रकारिता में इनका अमूल्य योगदान रहा है।

□

होलिका दहन का सांस्कृतिक महत्त्व

डॉ॰ मृत्युंजय उपाध्याय

सत् और असत् का संघर्ष सृष्टि के आदिकाल से चल रहा है। भारतीय संस्कृति का मूल है - 'असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय।' हम असत् से सत् की ओर और अंधकार से प्रकाश की ओर चलें। इसी के लिए चिरकाल से संघर्ष चल रहा है और सत् की विजय से भरा है हमारा संपूर्ण वाङ्मय। हमारा जीवन, हमारे पर्व-त्यौहार, हमारे व्रत अनुष्ठान। सच पूछिए, तो हमारी संस्कृति मानवीय चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए प्रयासरत है और हम हैं कि नाना बाधाओं, परिस्थितियों की विपरीतता के घटाटोप में भी उत्तरोत्तर ऊँचे उठते जाते हैं। कभी प्रह्लाद के रूप में, कभी मीरा के रूप में, तो कभी सुकरात के रूप में।

पर कल्पना कीजिए हिरण्यकशिपु की, जिसकी गद्दी सोने की बनी है। अनंत वैभव का स्वामी है वह। समृद्धि, ऐश्वर्य दास है उसके वह प्रभुत्व संपन्न है और 'प्रभुता पाइ काइ मद नाहिं' (तुलसी)। वह सार्वभौम, सर्वशक्ति संपन्न समझता है अपने को। इसीलिए स्वयंभू भगवान भी। उसका ही पुत्र प्रह्लाद (जो सबको विशेष रूप से अपने शील, सौजन्य, आचार से आह्लादित करे) प्रभु का परमभक्त है। हिरण्यकशिपु नही चाहता कि उसका ही पुत्र उसके प्रभुत्व पर प्रश्नचिह्न खड़ा करे। फलतः, नाना उपायों से उसे मारने की चेष्टा की जाती है। भक्त सन्मार्ग पर आरूढ़ है।

जब वरदान अभिशाप बन जाए

अपने भाई को परेशान देख होलिका सामने आती है - 'आप नाहक परेशान हैं भैया। मुझे आग में नहीं जलने का वरदान है। प्रह्लाद को लेकर आग में मैं बैठ जाऊँगी। वह जलकर क्षार क्षार हो जाएगा। 'हिरण्यकशिपु हुआ प्रसन्न-'चलो पथ का काँटा कटा।' उद्दाम अहंकार से संपन्न व्यक्ति का विवेक मर जाता है। 'जब नाश मनुज पर छाता है, पहले विवेक मर जाता है।' (दिनकर) वरदान अभिशाप बन जाता है। होलिका स्वयं जल जाती है - प्रह्लाद मुसकुराता रह जाता है। क्या आग अपने धर्म (दाहकता, ज्वलनशीलता) का परित्याग करती है ? वह किसी को शीतलता किसी को दाहकता प्रदान करती है ? ऐसे प्रश्न सोचने को विवश करते हैं पर आततायी, पापी, तापी, परपीड़क का वरदान अभिशाप बनकर उसे ही नष्ट कर देता है।

पापी अपने पाप से ही शंकित रहता है। अपनी रक्षा के लिए नाना उपाय लगाता है। हिरण्यकशिपु ने भी भगवान से वरदान मांगा था - वह न नर से मरे, न देवता से, न किन्नर से न गंधर्व से, न अस्त्र से न शस्त्र से, न आकाश में न पाताल में, न धरती पर न स्वर्ग में, न दिन में न रात में, न प्रातःकाल न अपराह्न। भगवान् 'तथास्तु' कहकर अंतर्धान हो गए थे।

परंतु जब उसका अत्याचार पराकाष्ठा पर पहुँच गया - चार चार का बाजार गर्म हो गया, तो भगवान् को ऐसी व्यवस्था करनी पड़ी कि वरदान की रक्षा भी हो और वह अभिशाप

बनकर पापी का सर्वनाश कर दे। नृसिंह का अवतार हुआ और हिरण्यकशिपु का संहार। मानवता को त्राण मिला। सज्जनता को गति मिली।

आत्मा की अमरता, सत्य की विजय और होली का त्यौहार

भारतीय संस्कृति विश्वास करती है आत्मा की अमरता पर –

'नैनं छिन्दंति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥'

न शस्त्र इसे काट सकता है, न आग जला सकती है, न जल बहा सकता है, न हवा सुखा ही सकती है। आत्मा है अजर अमर। देह पुरानी पड़ी, तो आत्मा ने बदल दिया उसे 'वासांसि जीर्णानि यथा विहाय ....' (गीता) की तरह। जो देह और देही का भेद नहीं जानते, आजीवन अज्ञान की जड़िमा में ग्रस्त देह को ही श्रेय मानकर क्रिया व्यापारों में लीन रहते हैं – उनकी गति हिरण्यकशिपु की तरह होती है।

यह सत्य की विजय का आख्यान है। मानवता के उन्नयन का गीत है और है एक ऐसे समाज की स्थापना का स्तुत्य प्रयास, जिसमें भेद न हो, अभेद हो, समत्व बुद्धि हो। सज्जन, भक्त को प्रश्रय मिले।

होलिका दहन के अवसर पर गाए जाने वाले गीत, मनने लगा त्यौहार। इसे होली कहें, होलिका दहन कहें या वसंतोत्सव। इसका सांस्कृतिक पक्ष मित्रता, अभेदता, समता का पाठ पढ़ाता है। यजुर्वेद का सूक्त है –

मित्रस्याहं चक्षुषा सवाणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥

–यजुर्वेद 36.18

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततोन विजुगुप्सते ॥
यस्मिन त्सर्वाणि भूतानि आत्मै वां मुद् विजानतः
तत को मोहः कः शोकः एकात्व मनु पश्यतः ?

– यजुर्वेद 40.7.8

अर्थात् सभी प्राणियों के प्रति मित्र-दृष्टि रखते हुए सभी प्रणियों को अपने में और सभी प्रणियों में अपने को देखना चाहिए और समझना चाहिए कि मैं ही सभी प्रणियों के रूप में विद्यमान हूँ। ऐसी दृष्टि से संपन्न पुरुष मोह (अज्ञान) और शोक (दुःख) से छूट जाता है। इसकी प्रयोगशाला है हमारा जीवन और भारतीय पर्व-त्यौहार, जिसमें होली का मुख्य स्थान है। ऐसी सभा, ऐसा माहौल, रंग अबीर की ऐसी बौछार, राग आनंद का ऐसा अवसर कि भेद मिट जाएं। सब मस्ती में गा उठें – 'सदा आनंद रहै यही द्वारै मोहन खेले होरी हो।'

वसंतोत्सव बनाम कृषकीय संस्कृति की प्रतीक होली

फाल्गुनी पूर्णिमा। सोलहो कलाओं से युक्त चंद्रमा। दूधिया चांदनी अग-जग को नहला रही है। वसंत अपने पूरे प्रकर्ष पर है। वासंतीपवन का एक हल्का सा झोंका कामनाओं की

अनंत कथा सहलाने लगता है। वसंत का सखा है कामदेव। ऋग्वेद में अद्वैत में इच्छा की उत्पत्ति मानी जाती है। यह इच्छा ही कालांतर में प्रेम के देवता के प्रतीक स्वरूप 'कामदेव' के नाम से विख्यात हुई। अथर्ववेद में काम की उत्पत्ति को सर्वप्रथम माना गया है। और इसे अनन्य और अद्वितीय देवता कहा गया है फलतः वसंत और कामदेव के प्रभाव का परिणाााम होली में देखते ही बनता है। पाँच बाणों से बेंधने लगता है कामदेव और धरती का पोर पोर अजीब मादकता से नहा उठता है। कामदेव के पंचवाणों के दो वर्ग हैं। पहले वर्ग में प्रभावक बाण है यथा द्रवण, शोषण, तापन और मोहन। दूसरे वर्ग के बाण पुष्पायुध हैं - पाटलचंपा, केवड़ा, कमल्न और आम्रबौर। पता नहीं इस समय सुधियों के कौन से गवाक्ष खोल मधु बयार आती है। वह लौकिक नायिका हो या फिर अरूप की आराधिका (जिसका मिलन और विरह दोनों भावात्मक हैं, अरूपात्मक है) प्रिय मिलन की तत्परता व्यक्त करने लगती है। 'पाटल के सुरभित रंगों से, रंग दे हिमसा उज्जवल दुकूल गूँथ दे रसना में अलि गुंजन से पूरित झरते बकुल फूल रजनी से अंजन मांग सजनि ! दे मेरे अलसित नयन सार, लहराती आती मधुबयार।

–महादेवीवर्मा

उधर लोकजीवन में एक नायिका की विरहाकुलता बढ़ा देती है होली। श्याम की वीणा की टेर सुनते ही उसके रोम रोम में दर्द की एक तेज लहर दौड़ जाती है - 'आसिन बित गए कातिक नित गए पूस महीना। माघ मास बालम नहिं आए फागुन मस्त महीना। श्याम बजा गए, वीणा एक दिन श्याम न हो।'

फाल्गुनी पूर्णिमा तक चैती फसल खेतों में पककर तैयार हो जाती है। कृषि ही हमारी संस्कृति की रीढ है। उसी से मिलता है अन्न। श्रमवलय जीवन, ग्रीष्म की पंचाग्नि से लेकर हड्डी तक छेदने वाली बर्फीली हवा की मार खाते-खाते थक जाता है। हो जाता है श्रांत और क्लांत। उसका जीवन स्वयं एक अनुष्ठान है। वृत्त है। गायें है उसकी लक्ष्मी। बैल है विष्णु। वह चिलचिलाती धूप में बीजावपन कर अन्नयज्ञ करता है। जन-जन की तृप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगाता है। उसकी कर्मरसता में स्निग्धता का आसव घोलती है होली। इसलिए संपूर्ण भारत के किसान इस पर्व को धूमधाम से मनाते हैं।

इसमें उनका उद्येश्य जहां मनोरंजन, हँसी खुशी है, वहीं लोकपरंपरा लोक नृत्य, लोक वार्ता को विकसित कर सांस्कृतिक उन्नयन और पोषण भी है। इनकी कथाओं, गीतों को लोककंठ जगा नही पाता, जो पता नहीं ये कब विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जाये। प्रहलाद और होली को जीवित रखने वाले वे लोग हैं, जो गावों, खेतों, खलिहानों में रहते है और साल-दर-साल ढोलक, मृदंग पर थाप देकर प्रहलाद जैसे भक्त का पराक्रम दुहराते है, जो होलिका के प्रति घृणा उगलते हैं।

जो विभाग या विरोध सिखाए, उसका अनुभव कराए - वह संस्कृति नहीं है। वह तो अविभाग, अविरोध का अनुभव कराती है। वह विचार की नही, आचार की भाषा जानती है। वह संस्कार जगाती है। परिष्कार जगाती है। इसीलिए संस्कृति अपरिच्छिन्न सत्य की बोधक है - उसका परिच्छेदकारी कोई विशलेषण नही हो सकता। वह भारतीय-अभारतीय के कठघरे में खड़ी नही होती। वह देश कालातीत है। सार्वभौम और शाश्वत है। वह राम और शिव का भेद नहीं जानती। कृष्ण और विष्णु का अंतर नही पहचानती।

राम जनजन के नायक हैं। उनकी व्यथा-कथा जनजन को द्रवित करती है। उनका वन प्रयाण कितना हृदयद्रावक है। इसीलिए तो एक-एक की ज़ुबान पर यही सवाल लटका है -

'कौन गाछतर आसन वासन, कौन गाछतर डेरा
कौन गाछतर भीगत होईं हैं राम लखन दोऊ
भैया वन की डगर चले।'

दूसरी ओर कृष्ण की मुरली घाट घाट पर बाट-बाट पर, डगर डगर पर बजती है। मुरली की तान पर घर-बार, पति-परिवार को छोड़ती भागती, गिरती-पड़ती गोपियाँ-'चंद्रवती पनियाले जाइ कुआँ पर कान्हा बजावै बाँसुरिया'। भला कष्ण कुएँ पर बाँसुरी बजाएँ और चंद्रावती (एक गोपी विशेष) वहाँ जाने का लोभ संवरण कर पाए। इसी प्रकार सोलह हजार से अधिक गोपियाँ और अकेले कृष्ण। चलती रहती है आत्मा परमात्मा की अकथ कहानी। आत्मा-परमात्मा का यही ऐक्य मिलन अद्वैत है। इसकी कामना वेदों में की गई है। हमारी संस्कृति में इस पर बल है।

ब्रज के रज रज में कृष्ण भक्ति का पराग है। वहाँ का कण-कण कृष्णलीला का साक्षी है। वहाँ की ब्रजबालाएँ बावरिया शिव के साथ होली खेलने में संकोच का अनुभव कर रही हैं। पर यह संकोच नहीं रागात्मक संबंध का प्रमाण है - 'मै कैसे होली खेलूँ रे बावरिया के संग अंगभभूत गले विषमाला, लटन बिराजै गंग।' और दूसरी ओर भक्तगण मंदिर-द्वार पर गुहार मचा रहे है - 'मंदिर के खोल किवाड़ सदाशिव खाड़े दुनिया दरसन को'

यहाँ के धरती-पुत्र हैं आदिवासी। प्रकृति उनका श्रृंगार ही नहीं करती, रक्षण-पोक्षण भी करती है। उनके जीवन को गति देती है। आदिवासियों की बहुलता है मंडला में। मध्यप्रदेश का एक जिला है मंडला। कल-कल निनादिनी नर्मदा से सिंचित एवं आवेष्ठित। यह जिला अपनी वन्य-भूमि, वन्यपशु और विविध आदिवासी संस्कृति से ओत-प्रोत है। संस्कृति के नाना आयामों के दर्शन सुलभ है यहाँ। गाँव के मुखिया द्वारा होलिका दहन। होली के जलते ही दारू का दौर। मांदर की थाप के साथ होली सैला नृत्य की थिरकन। कई जोड़े पाँव एक साथ ताल पर नाच रहे है। हृदय की कली-कली खिल उठती है। सारे बंधन, अवरोध तोडकर। 'डोगरा मां बोलथम मंजूर मोर हारिल छोना पे मेरा मां। कुहू-कुहू बोलय मोर कारी कोयलिया कोहो बोलाय मयूर। मोर रामा प्यारे हो पलाश फूल छिटक रहे चारों खूँटे। बोलत है मंजूर मोर कारी कोयलिया।'

ऐसे उत्सव, त्यौहार से मानव की आकाश के समान विस्तीर्ण और साथ ही समुद्र के समान गंभीर बनने की कामना फलवती होती है। पारस्परिकता, राग-रंग और तादात्म्य की त्रिवेणी में सारे विकार, कलुष घुल जाते हैं।

•

होलीः आत्मसाक्षात्कार का पर्व

होली के दिन श्लील-अश्लील का भेद नहीं रहता। फागुन मर बूढ़े भी देवर लगने लगते हैं। 'मर फगुवा बुढ़वा देवर लागै।' डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने एक लेख लिखा है - 'नाखून क्यों बढ़ते है।' उसमें एक शाश्वत सवाल उठाया गया है कि बार-बार नाखून का काटना, उसके प्रति हमारा जागरूक रहना और फिर भी नाखून का बढ़ते रहना इस बात का

सबूत है कि हमारा असुर मरा नहीं है। वह बार-बार सिर उठाता है और हम हैं कि उसका सिर कलम करते जाते हैं। इस आसुरी वृत्ति को सही अर्थ में हम पहचान पाएँ, तो उससे मुक्ति भी मिल जाए। आत्म साक्षात्कार की इस ज्योति के उदय होते ही मनुष्य तीनों भ्रमों के पार चला जाता है। तुलसीदास ठीक ही लिखते हैं -

'को कह सत्य झूठ कह कोऊ,
युगल प्रबल करि मानै।
तुलसीदास परिहरै तीनि भ्रम,
जो आपनु पहिचानै।।'

होली के दिन कीचड़, मोबिल, गंदा पानी न केवल दूसरे को डालते हैं, वरन अपने सरा-बोर होने में सुख का अनुभव करते है। बहुत से प्रांतों में होली के दिन पूर्वाह्न में या एक दिन पहले 'धुरखेल' खेलने का रिवाज है। इसी समय श्लील-अश्लील का भेद नहीं रहता। कभी होलिका के प्रति भर्त्सना, क्रोध, कभी अपने भीतर के दानव को प्रकट करने के लिए ऐसा खेल चलता है। अपने राम खेल में भी रहते और इससे अलग खड़े अपने भीतर को पहचान पाते हैं।

कर्मवाद और मनोरंजन का समन्वय

संस्कृति ने कर्मवाद के साथ ऐसे पर्वों का विधान किया, जिससे राग-रंग, उत्सव-आनंद तो मिले ही, पारस्परिकता को प्रोत्साहन मिले। वैमनस्य, द्वेष भूलकर एक साथ वे नाच सकें, गा सकें - भेद की सारी दीवार तोड़कर ऐक्य का पाठ पढ़ सकें। उनके पाँव जमीन पर हों पर सिर तो आसमान में ही रहेंगे। सारी दुर्बलता, सीमा, ईर्ष्या-द्वेष के मध्य किसी विराट् आदर्श का संधान कर सकें। बार-बार उसकी आवृत्ति कर अपने को जगा सकें - चाहे सज्जन और आर्य के लिए संघर्ष करने वाले प्रहलाद से जुड़ा पर्व होली हो या अनार्य संस्कृति के नाश के लिए प्रतिबद्ध रामजन्म से संबंधित रामनवमी या उनकी विजय से जुड़ी विजयादशमी - सभी संस्कृति के रक्षण, पोषण, संवर्धन के लिए संकल्पित हैं।

□

एकांकी

मकड़ी का जाला

डॉ॰ रामप्रकाश सक्सेना

हॉस्पिटल के एक वार्ड का स्पेशल रूम। कमरे में एक बेड, दो स्टूल, और एक ट्रे रखी हुई है। दीवार पर एक जगह मकड़ी का जाला लगा हुआ है। सुबह का समय है। मंच पर धीरे-धीरे प्रकाश तीव्र होता है। एक मरीज़ बेड पर लेटा हुआ दिखाई देता है, जिसके एक पैर में प्लास्टर लगा हुआ है। वह धीरे-धीरे उठता है और धीमी गति से अपना पाँव सामने रखे स्टूल पर रखता है।

नर्स का प्रवेश

मरीज़ : गुड मॉर्निंग, सिस्टर!
नर्स कोई ध्यान नहीं देती और अपने कार्य में व्यस्त रहती है।

मरीज़ : मैंने कहा, गुड मॉर्निंग सिस्टर!

नर्स : /बिगड़कर/तुम अमसे गुड मॉर्निंग कराने को आया है या अपना इलाज। अमसे लफड़ाबाजी नहीं चलेगा।

मरीज़ : /आश्चर्यचकित होकर/मैंने तो सिर्फ़ गुड मॉर्निंग कहा था सिस्टर! आप तो फ़ालतू ही . . .

नर्स : /अकड़कर/अमको तुम्हारा सब गुड मॉर्निंग मालूम। अमारा टाइम मत खराब करो। और अपना ये मूँ, इसको बंद रकेगा।

मरीज़ : सिस्टर, तुम नाराज़ क्यों होती हो? रात भर पाँव में बहुत दर्द होता रहा। एकाध पेन-किलर दे दीजिए न, प्लीज़। (जम्हाई)

नर्स : पेन किलर? अमको सब मालूम है। तुम अपना ये मूँ बंद करो। अमसे बात नहीं करेगा, समझा!/थर्मामीटर निकालते हुए/मूँ को कोलो।

मरीज़ : सिस्टर अभी तो आपने मुँह बंद करने के लिए कहा है।

नर्स : /गुस्से में/तुमको अपना इलाज कराना कि नही? अम बोलता मूँ कोलो, जल्दी, दूसरा पेशेंट लोग को नहीं देखना है क्या?
/मरीज़ मुँह खोलता है और नर्स थर्मामीटर लगाती है। मरीज़ मुँह बंद नहीं करता क्योंकि वह बहुत डरा हुआ है।/

नर्स : अब मूँ को बंद नहीं करेगा क्या?
/मरीज़ थर्मामीटर लगाकर चुप हो जाता है।/

नर्स : कल शाम को कितना टेंपरेचर था/मरीज़ कुछ नही बोल पाता क्योंकि वह थर्मामीटर लगाए हुए है/ए मैन, अम पूछता कि कल शाम को कितना टेंपरेचर था?

मरीज़ : ऊँ, ऊँ . . ।

नर्स : अरे, वैसे तो फालतू का बड़बड करता है । जब अम पूछता है तो बोलता नहीं है।

मरीज : . . . . .

नर्स : /घड़ी देखते हुए/अब मूँ कायेको नई खोलता ? थर्मामीटर काएगा/खाएगा/ क्या ?

/मरीज़ थर्मामीटर निकाल कर नर्स को देता है । नर्स टैंपरेचर देखकर चार्ट में रेकॉर्ड कर देती है ।

मरीज़ : /बहुत डरते हुए/सिस्टर, बहुत दर्द हो रहा है पाँव में, प्लीज़ कोई दवा दे दीजिए न।

नर्स : चलते-चलते रास्ते में ठीक से नहीं देखेगा तो टांग नहीं टूटेगा ? अब अमको बोलता दरद होता । /पैकेट से टेबलेट देते हुए/इसको खा लो।

मरीज़ : सिस्टर, आप क्या कह रही हैं ?

नर्स : अम बोला, अमसे बात नहीं करेगा। मूँ को बंद रकेगा।

/बोलते हुए चली जाती है /

मरीज : /पानी के साथ टैबलेट खाता है/अरे बाप रे, किस बला से पाला पड गया है। मुँह खोलो मुँह बंद करो। बिलकुल हिटलर की नानी है। इंटेलिजेंस का जबाब ही नहीं । थर्मामीटर मुँह मे रखवाकर शाम का टैंपरेचर पूछा जा रहा था।

/मकड़ी के जाले की तरफ देखते हुए/वैसे इस हॉस्पिटल का मैनेजमेंट भी लाजवाब है । कबसे वह मकड़ी का जाला वहाँ पर लगा हुआ है, और कोई आकर साफ भी नहीं करता।

झाड़ूवाले का प्रवेश। झाड़ू को आलस्य के साथ इधर-उधर घुमाता है।

झाड़ूवाला : राम-राम साहब।

मरीज़ : राम-राम भाई। आपकी ये नर्स तो बहुत खतरनाक है।

झाड़ूवाला : आपने जरूर गुड मार्निंग किया होगा और फिर मिर्च-मसाले का स्वाद आ गया होगा।

मरीज़ : क-क-क्या मतलब ?

झाड़ूवाला : मतलब तो साब आप बाद में समझ जाएगा। एक सिग्रेट मिलेगा ?

मरीज़ : मैं सिग्रेट नहीं पीता।

झाड़ूवाला : तो आठाना तो होगा इच्च। उससे ही काम चल जाएंगा। /टेबल पर रखा 50 पैसे का सिक्का उठा लेता है , /वैसे साब, आप करते क्या हैं ?

मरीज़ : मैं ? मैं एक शायर हूँ और . . . . .

झाड़ूवाला : तो साब आप इधर-उधर के ही चक्कर में रहते होंगे।

मरीज़ : अरे, अजीब आदमी हो तुम । लेकिन हो मजेदार। तुमको तो मालूम होना चाहिए कि शायर और कवि दिल से काफी नाजुक और स्वभाव से सौंदर्य-प्रेमी होते हैं।

झाड़ूवाला : बस समझ गया। फिर तो साब आपकी टांग टूटेगी ही। अभी भी संभल जओ - अब दिल टूटेगा।

मरीज़ : मैं . . . समझा नहीं ।

झाड़ूवाला : दो दिन यहाँ रहेंगे तो सब समझ में आ जाएंगा । अच्छा अब मैं चलता हूँ, टाइम हो गया।

झाड़ूवाले का प्रस्थान

मरीज़ : ये हॉस्पिटल के लोग भी बड़े अजीब हैं । एक से बढ़कर एक नमूना । पहले मालूम होता तो इस हॉस्पिटल में कभी एडमिट नही होता ।/चौंककर/ ओफ्ओ, मैं भी कितना बेबकूफ़ हूँ । स्वीपर से मैने जाला साफ़ करने के लिए कहा ही नहीं ।

(वार्ड बॉय का प्रवेश)

मरीज़ : स्वीपर भाई . . . ज़रा सुनिए तो।

वा· : अरे साब, जरा ज़बान संभाल के बात करो । मैं तुमारे को स्वीपर दिखता क्या ? मैं तो यहाँ का वार्ड बाय हूँ, साफ-सफाई करने वाला, समझा क्या ?

मरीज़ : समझ गया भाई । /डरते हुए/ बहुत बड़ी ग़लती हो गई, माफ़ कर देना ।

वा· : अब माफी मांगने से क्या होता ? स्वीपर कह कर मेरा इनसलट कर दिया । पर जाने दो, बताओ कौनसा काम अटका हुआ है ?

मरीज़ : यहाँ की हालत देखकर तो बोलने से भी डर लगता है, जाने दीजिए ।

वा· : अरे, इसमें मुश्किल की कौनसी बात है । अपुन से बिल्कुल नहीं डरने का । दिखने में अपुन रंगदार है, लेकिन प्यार से बात करेंगा तो जान देने के लिए भी तैयार रहता, क्या ?

मरीज़ : अरे नहीं नहीं भाई स्वीपर भाई, ओह सॉरी, वार्ड बॉय साहब, उसकी कोई ज़रूरत नहीं है । बात यह कि उस कोने में बडी गंदगी है । कितने दिनों से वहाँ पर मकड़ी का जाला लगा हुआ है । आप अगर साफ़ कर देंगे तो बड़ी मेहरबानी होगी।

वा· : देखो साब, अपुन का काम बेड की सफाई करना है । बेड के ऊपर जाला लगा होगा तो अभी साफ कर देता, मगर वो जाला साफ करने की ड्यूटी स्वीपर का है । मैं साफ नही करूँगा, क्या ?

मरीज़ : अच्छा कोई बात नहीं , रहने दो ।

वा· : अभी से ही ठंडा गिर गया क्या साब । हर काम कराने का अलग-अलग तरीका होता है । लेकिन तुम पढ़े-लिखे लोगों को ये सब नहीं मालूम होता । अपुन के ख्याल से तो अपने देश का बेड़ा गरक पढ़े लिखे लोगों ने ही किया है ।

मरीज़ : क्या मतलब ?

वा· : इसमें मतलब का कौनसा मतलब है ? तुमसे पहले जो पेशेंट आया था, वो गाँव का था, बिन माँगे ही अपुन को दस रूपये इनाम में दे दिया था । अपुन उसका सब काम करने के साथ फुकट में कपड़ा भी धोता था, क्या ?

मरीज़ : अजीब बात है, मैं किसी को पैसे नहीं दूँगा, क्या । हॉस्पिटल वाले कम पैसे लेते हैं क्या ?

वा.   जाते हुए/ठीक है, फिर हॉस्पिटल के लोगों से ही साफ करवा लेना। मैं जाता, क्या ? /मुड़ कर वापस आते हुए/लगता है साहब आप नाराज हो गए। मेरा बोलने का मतलब था कि थोड़ा सा हाथ गरम करने से काम हो जाता है। आज के जमाने में तो . . . . .

मरीज़ : भई आपको साफ़ करना है तो करो, फालतू लेक्चर मत दो।

वा. : अरे साहब, गुस्सा कायको करते हो ? डाक्टर बोलता कि ऐसा करने से वो हो जाता है, क्या -- ब्लड प्रेशर। अच्छा जाने दो साब, पाँच रूपये ही दे दो, मैं अभी . . . .

मरीज़ : मुझ पर मेहरबानी कीजिए और आप यहाँ से तशरीफ़ ले जाइए। अगर ज़्यादा बात की तो मैं आपकी कंपलेंट कर दूँगा।

वा. : कंपलेंट/हँसता है/ किससे करोगे ? ठीक है वो भी कर के देख लो। /बोलते हुए जाता है/

वार्ड बॉय का प्रस्थान

/झाड़ूवाले का प्रवेश/

झाड़ूवाला : राम राम साहब।

मरीज़ : सुबह से कितनी बार राम राम करोगे तुम ?

झाड़ूवाला : साब, सुबेरे आपको राम राम बोला तो आठाना मिल गया था, अब लक्ष्मी की भक्ति नहीं करूँगा तो किसकी करूँगा ?

मरीज़ : यहाँ तो लगता है सभी लक्ष्मी के भक्त हैं। /चिल्लाकर/और यह डॉक्टर अभी तक क्यों नहीं आया ?

झाड़ूवाला : अरे डॉक्टर होने से क्या होता है ? हमारे मुंबई में बोलते कि दस लोगों को मारने से डॉक्टर बनता है और सौ को मारने से सरजन। इनके हाथों जो कोई पड़ गया, तो डायरेक्ट कब्रिस्तान में जाता।

मरीज़ : तुम्हारे इस हॉस्पिटल में लगता है, लेक्चर देने और डायलॉग मार्रने का कोई लंबा ट्रैडीशन है। अभी वार्ड बॉय भी लेक्चर सुना कर ही गया है और तुम्हारी वो नर्स, वो तो खाने को ही दौड़ रही थी।

झाड़ूवाला : अरे साहब, एक बात बताता। वो नर्स से तुम जितना गुस्से से बात करोगे, उतना सीधे से वो तुम से बात करेगी।

मरीज़ : ऐसी बात है ? तो ठीक है आगे से ध्यान रखूँगा। अच्छा, अगर आप जाते-जाते वो मकड़ी का जाला साफ़ करते जाएँ तो बड़ी मेहरबानी होगी।

झाड़ूवाला : साहब, मेहरबानी तो आप बड़े लोग करते हैं, हम तो गरीब आदमी हैं, आपकी सेवा करते हैं।

मरीज़ : /हँसते हुए/अरे भई, मैं कैसी मेहरबानी करूँ ?

झाड़ूवाला : अरे साब, दो-चार रुपए दे दो इनाम में। और क्या मैं हीरे-मोती थोड़े ही माँग रहा हूँ।

मरीज़ कमाल है, यहाँ रिश्वत मांगने का भी अजीब तरीका है। मैं तुम्हे यह काम करने के लिए एक पैसा नहीं दूँगा। तुमको साफ़ करना है तो करो, नहीं तो अपना रास्ता ़ ़खो।

झाड़ूवाला : अरे साब, गरीब आदमी को दो-चार रुपए देने से आपका क्या जाएगा ? बड़े लोग तो लाखों रुपया खाता है और आप दो -चार रुपए देने में ही बेईमानी बता रहे हैं।

मरीज़ : अरे वाह, रिश्वत नहीं दे रहा हूँ तो बेईमान हो गया मैं ?

झाड़ूवाला : /नाराज़ होकर/ अरे रिश्वत कौन मांग रहा है ? /जाते हुए/ कैसा आदमी है ? प्यार से समझाया तो समझता नहीं, अब तो पैसे देगा भी तो नहीं लूँगा।

झाड़ूवाले का प्रस्थान

मरीज़ : लो, ये हॉस्पिटल में एडमिट क्या हुआ, इन जमादार महाशय ने तो बेईमानी का सर्टिफ़िकेट ही दे दिया। /फीकी हँसी के साथ/ और ऊपर से नाटक कैसे कर रहा था।

/ऊपर का वाक्य बोलते समय नर्स का प्रवेश/

नर्स : लो, ये टैबलेट अभी खा लो।

मरीज़ : मुझे नहीं चाहिए।

नर्स : आई आई यो। तुम गुस्सा कायको करता जी ? गुस्सा करने से दरद कम नहीं होगा, लो टैबलेट खाओ।

मरीज़ : टैबलेट खा लो। तुम्हारा स्वीपर गाली खिलाकर गया है और वार्ड बॉय लेक्चर का मिक्सचर पिला के गया है। डॉक्टर का पता नहीं सारे दिन। वे आकर मालूम नहीं क्या करेगा।

नर्स : आई आई यो। डॉक्टर नहीं आया तो अम क्या करेगा ? अम अपना ड्यूटी देता। तुम ये टैबलेट रख लो, दरद होने से पानी के साथ काएगा।

मरीज़ : हाँ ठीक है, ठीक है। दूसरे पेशेंट को देखो जाकर। मैं सबकी कंपलेंट कर दूँगा।

नर्स : आई आई यो। तुमको ब्लड प्रेशर हो गया जी। अम अभी डॉक्टर को भेजता।

मरीज़ : /चिल्लाकर/ हाँ, हाँ। मुझे हाय ब्लड प्रेशर हो गया है। इस जाले को देख-देखकर ब्लड-प्रेशर नहीं होगा तो क्या होगा ?

नर्स : तुम आइश्ता बोलो जी। अम अभी स्वीपर को भेजता। गोस्सा करना अच्छा नहीं। हॉस्पिटल में आराम से रहना। अम अभी जाता और स्वीपर को भेजता।

मरीज़ : ठीक है, ठीक है, भेज दो।

नर्स : तुम आराम से रहेगा, समझा। गोस्सा नई करेगा।

नर्स का प्रस्थान

मरीज़ : गर्म होकर बोलने से तो ये नर्स वास्तव में ठीक काम करती है। इसके साथ तो टेढ़ी उंगुली से ही घी निकालना पड़ेगा।

पत्रकार का प्रवेश

पत्रकार : पत्रकार एक अधेड़ व्यक्ति है, जो आँखों पर चश्मा लगाए हुए है। उसकी छोटी दाढ़ी है। बिखरे बालों को संभालता हुआ प्रवेश करता है। (घी निकालने का काम कबसे शुरू कर दिया, भई। कोई घी बनाने की फैक्टरी खोल कर सेठ बनने का इरादा है क्या ?)

मरीज : अरे आओ भई आओ। कौनसी फैक्टरी और कहाँ का सेठ ? यहाँ आकर तो बहुत बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ।

पत्र· : अरे पहले ये तो बताओ कि तुम्हारी तबीयत कैसी है ?

मरीज़ : तबीयत को मारो गोली। मालूम है, यहाँ पर मुझे क्या-क्या एडजेक्टिव सुनने को मिले हैं ? मैं बेबकूफ़ हूँ क्योंकि पढ़ा-लिखा हूँ। मैं बेईमान हूँ क्योंकि रिश्वत नहीं देता।

पत्र· : यह सब क्या बक रहे हो।

मरीज़ : बक नहीं रहा, हकीकत बयान कर रहा हूँ। मेरी ये सब खूबियां यहाँ के लोगों ने रिसर्च करके निकाली हैं।

पत्र· : वाह। तुम तो बड़े रुस्तम निकले।

मरीज़ : यार तुम्हें मज़ाक सूझ रहा है, यहाँ मेरा दम घुट रहा है। ऐसा बेकार हॉस्पिटल कि पूछो मत।

पत्र· : तो क्या तुम हॉस्पिटल को घर समझ कर आए थे ?

मरीज़ : तुम भी हद करते हो। देखो। महीनों से उधर मकड़ी का जाला लगा हुआ है। खुद तो कोई साफ़ करता नहीं, और अगर बोलता हूँ कि भई ज़रा साफ़ कर दो, तो हर आदमी कहता है कि यह मेरा काम नहीं। फिर पैसे लेकर हर आदमी मकड़ी के जाले को छुड़ाने के लिए तैयार हो जाता है।

पत्रकार : (चश्मा साफ करते हुए और गंभीर मुद्रा में)। अच्छा तो यह बात है। ठीक है। देखता हूँ।

मरीज़ : यह देखता-वेखता क्या है। तुम पत्रकार हो। तुम ही इन सब को मज़ा चखाओ।

पत्रकार : /अत्यंत गंभीर होते हुए/हूँ, यह जो मकड़ी का जाला है न, जिसे तुम सिर्फ दीवार पर देख रहे हो, मेरे ख्याल से हम सभी के दिमाग़ पर छाया हुआ है। इसी ने हमारी दृष्टि धुंधली कर दी है। जब तक यह जाला हमारे चरित्र से दूर नहीं होता, कोई ठीक कार्य हो ही नहीं सकता। मैं इस जाले को दीवार पर ही नहीं, बल्कि हर व्यक्ति के दिमाग पर और संपूर्ण समाज के ऊपर फैला हुआ देखता हूँ। यह तो एक बड़ी थीसिस का सब्जेक्ट है।

मरीज़ : गई, गई भैंस पानी में। मेरा सर ओखली में फँसा है और तुम्हें आनंद आ रहा है। थीसिस के सब्जेक्ट ढूंढ़ रहे हो इस जाले में।

पत्र· : हाँ, जब तक हम इसे सीरियसली नहीं लेंगे, इसकी इंपॉरटेंस एक थीसिस के सब्जेक्ट की तरह नहीं समझेंगे, तब तक यह जाला जनमानस के दिमाग़ से नहीं उतरेगा।

मरीज़ : एक काम करो। तुम भी रास्ते में अपनी टाँग तुडवा लो और यहाँ आ जाओ। फिर लिखो थीसिस पर थीसिस।

पत्र. : मैं मजाक नहीं कर रहा, सीरियसली सोच रहा हूँ। इस सब्जेक्ट को वार फुटिंग पर लेना होगा। एक जंग छेड़नी होगी।

मरीज : वार फूटिंग पर लेना होगा, जंग छेड़नी होगी, हूँ। यार, पहले यह मकड़ी का जाला तो साफ़ करवाओ, जनमानस का कल्याण फिर कर लेना। यार जर्नलिस्ट हो, जॉर्नलिज्म का एकाध कमाल तो दिखाओ।

पत्र. : चलो, अच्छा ध्यान दिलाया। मेरी जंग यहीं से शुरू होती है। तुम कल न्यूज़ में देखना। वह प्रहार करूँगा कि . . . . . । तुम चिंता मत करो, तुम्हारा यह जाला ही नहीं, और भी कई चीज़ें साफ़ हो जाएँगी।

मरीज़ : यह हुई न बात। (पत्रकार केस से कैमरा निकाल कर मकड़ी के जाले का कई कोणों से चित्र लेता है।)

पत्र. : अच्छा भई, चलता हूँ, लौट के मिलता हूँ, गुड लक।/पत्रकार का प्रस्थान/

मरीज़ : लेट जाता है। प्रकाश धीरे धीरे कम होता है। पड़ोस के कमरे से (नेपथ्य से) नर्सों और कुछ पुरुषों की आवाजें स्पष्ट सुनाई देती हैं। धीरे धीरे आवाजें कम होती हैं और मरीज सोते-सोते उठ बैठता है। ऐसा प्रतीत होता है स्वप्न में किसी से बात कर रहा है। वह छटपटाता है। वह अध लेटा मकड़ी के जाले की तरफ देखता हुआ कहता है। "मेरी तरफ मत देखो। मैं तुम्हारे जाले में फंसना नहीं चाहता।

नेपथ्य से (मकड़ी के जाले की ओर से) आवाज आती है जैसे मकड़ी बोल रही हो, "ही . . . . .ही. . . . . ही. . . . . । तुम मुझसे डरते हो। डरो मत, मैं हर जगह विद्यमान हूँ। तुम मुझे हटाना चाहते हो ? हटाओ, खुद हटाओ। पर तुम मुझे कहाँ-कहाँ से हटाओगे।

ही, ही, ही . . . . .

मरीज़ : मरीज की चीख निकल पड़ती है और तत्काल एक नर्स उस कमरे में आ जाती है।

नर्स : तुम रात को कायको बोर करता ? सोने भी नहीं देता।

मरीज : मैंने डरावना स्वप्न देखा था। अतः चीख निकल गई होगी।

नर्स : तुम मरद होकर डरता है। तुम्हारी चीखसे हमारा तो नींद खराब हुआ। अच्छा, सो जाओ चुपचाप।

नर्स उस कमरे से चली जाती है और नेपथ्य से नर्सों की जोर-जोर से बात करने की आवाजें आती हैं।

मरीज लेट जाता है। प्रकाश धीरे-धीरे समाप्त होता है और मंच पर अंधेरा छा जाता है।

चेंज ओवर

प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ता जाता है , रेडियो पर प्रातः कालीन धुन नेपथ्य से सुनाई देती है । मरीज धीरे धीरे उठता है और अँगड़ाई लेकर बैठ जाता है , एक पेपर वाला मरीज को पेपर थमा जाता है ।

डीन तथा उसके साथ तीन डॉक्टरों का प्रवेश, इसमें एक महिला डॉक्टर है ।

डीन : आप सब लोगों ने तो हॉस्पिटल का नाम मिट्टी में मिला दिया । अब मैं कहीं का नहीं रहा।

डॉ.वर्मा : सॉरी सर । आप चिंत मत कीजिए ।

डीन : अब आप कहते हैं कि चिंता मत करो । आप एक मकड़ी का जाला साफ नहीं करवा सके, आपको तो चुल्लू भर पानी में डूब मरना चाहिए ।

डॉ. वर्मा : वी आर वेरी सॉरी सर । लेकिन जल्दी ही सब ठीक हो जाएगा ।
/इस बीच एक डॉक्टर देशपांडे टार्च और बायसेप्स लेकर जाले का बारीकी से इंस्पेक्शन कर रहे हैं/

डीन : अब क्या खाक ठीक होगा । सब पेपरों में छप गया है कि हमारे हॉस्पिटल के वार्ड नंबर चार में एक मकड़ी का जला लगा हुआ है । ओह, इट इज़ हॉरिबल । आप लोग क्या कर रहे थे ?

डॉ. : सर, वार्ड नंबर चार का चार्ज तो डॉ शर्मा के पास है ।

डॉ शर्मा : लेकिन सर, मैं तो दो दिनों से लीव पर थी।

डीन : अब आप लोग मेरा सिर मत खाइए । यह मकडी का जाला मैं ही साफ कर देता हूँ।

डॉ.शर्मा : अरे सर, आप क्यों तकलीफ करते हैं ? हम सब जूनियर डॉक्टर्स के रहते हुए आप ऐसा मत करिये । जाला मैं साफ कर दूँगी ।

डॉ.वर्मा : ओह नो । इट कैनोट हैपन । आप अपने हाथों को क्यों तकलीफ दे रही हैं ? यह जाला तो मैं दो मिनट में साफ कर दूँगा ।

डीन : /डॉ. की तरफ गुस्से से देखते हुए/शट अप डॉ. वर्मा ।

डॉ.देश. : सर ! देयर इज़ नो स्पाइडर इन द वेब, सर ।

डीन : नो स्पाइडर, माय फुट । इस मकड़ी के जाले की स्पाइडर को निकाल कर उसका डिसेक्शन कर देना चाहिए । बहुत तंग किया है इस स्पाइडर ने ।
/डॉक्टर देशपांडे बायसेप्स की सहायता से मकड़ी के जाले का एक सैम्पल एक छोटी डिब्बी में सावधानी के साथ रखते हुए दिखाई देते हैं ।/

डीन : /मरीज़ का पैर जोर से दबाते हुए/ अब आपका पैर कैसा है ?

मरीज : आ . . . . . ह । ज़ोर से चिल्लाता है /

डीन : क्यों क्या हुआ ?

मरीज़ : कमाल है, इतनी ज़ोर से पैर दबा रहे हैं और फिर पूछ रहे हैं कि क्या हुआ । मेरे पैर की बात छोड़िए और ये जाला यहाँ से हटवाइए ।

डीन : आप बिल्कुल मत घबराइए। हम अभी एक इमरजैंसी मीटिंग बुलाते हैं कि, यह सब हुआ कैसे।

/डीन डॉक्टरों के साथ जल्दी से बाहर जाता है/

मरीज़ : ल... ल... लेकिन ये जाला... ये जाला कैसे साफ होगा ? /डीन मरीज़ की यह बात सुने बिना ही कमरे से बाहर चला जाता है। /पेपर उठा कर देखते हुए/ क्या आर्टिकल लिखा है विजय ने। सचमुच कमाल कर दिया।

वार्ड बॉय का प्रवेश

वा० : अच्छा ? लगता है इस जाले के कारण आपको बहुत तकलीफ हो रहा है। तुम दो रुपया दे दो साब। मैं अभी साफ कर देता हूँ, क्या।

मरीज़ : तुम फिर पैसे की बात करने लगे, मैंने पहले ही कहा था कि मैं एक पैसा नहीं दूँगा, क्या।

वा० : एक बार फिर सोच लो साहब, हॉस्पिटल में सब काम ऐसे ही होते हैं। हम गरीब आदमी को पैसे देने से आपको बहुत फायदा होगा। मैं आपका काम सबसे पहले करूँगा, क्या।

मरीज़ : अच्छा भाई, लो लेना दो रुपये। पहले ये जाला जल्दी से साफ करो।

/वार्ड बॉय जैसे ही जाला साफ करने के लिए बढ़ता है, तभी वहाँ पर स्वीपर आ जाता है/

झाड़ूवाला : मेरे काम में टाँग मत अड़ा, फालतू में टूट जाएगी।

वा० : अरे कौन होता है बीच में बोलने वाला ? बीच में मत आ, नहीं तो ठीक नहीं होगा, क्या।

मरीज़ : तुमको जो करना है, करो, लेकिन यहाँ पर झगड़ा मत करो।

झाड़ूवाला : साब, जाला साफ करने की ड्यूटी मेरी है, फिर यह कैसे साफ करेगा।

वा० : ड्यूटी है तो पहले साफ क्यों नहीं किया ? अब साब ने आर्डर दिया है तो मैं ही साफ कर देता हूँ। /जाला साफ करने के लिए आगे बढ़ता है।/

झाड़ूवाला : मौत के मुँह में जा रहा है ? एक कदम आगे बढ़ाया तो यह देख रहा है न /झाड़ू दिखाते हुए/, गंजा बनाकर रख दूँगा।

वा : एक बार हाथ लगा।

नर्स का प्रवेश

नर्स : तुम लोग यहाँ पर अल्ला कायको करता जी।

मरीज़ : सिस्टर, ये दोनों कबसे झगड रहे हैं।

नर्स : ए, तुम लोग यहाँ से गेट आउट। पेशेंट लोग को परेशान करता ?

वा० : सुना नहीं।

झाड़ूवाला : बहरा हो गया है क्या, गेट आउट हो जा।

वा० : तू हो जा।

झाड़ूवाला : तू हो जा।

नर्स : तुम लोग झगड़ा कायको करता ? दोनों गेट आउट, चलो, अल्ला नहीं।

वा. : ठीक है साब, मैं बाद में आकर साफ कर दूँगा। /जाता है/अच्छा साब, फिर आऊँगा पैसे लेने।

झाड़ूवाले का प्रस्थान

नर्स : तुम्हारा तबीयत कैसा है ?

मरीज़ : यह जाला साफ़ हो जाने के बाद तबीयत भी एकदम साफ़ हो गई है। अब आप जाइए, मुझे डिस्टर्ब मत कीजिए।

नर्स : देको, गोस्सा नई करेगा, आराम से रहेगा। अम अबी जाता।

नर्स का प्रस्थान

डीन का प्रवेश

डीन : /अंदर आते हुए/इन सब लोगों ने हॉस्पिटल का नाम बदनाम कर दिया। सब के सब कामचोर हैं। मैं सबको डिसमिस कर दूँगा।

मरीज़ : अरे डीन साहब, अब क्या हुआ ?

डीन : अब पूछते हैं कि क्या हुआ ? आपने ही तो हमारी एडवर्स पब्लिसिटी करवाई है। पेपर वालों ने हमारे हॉस्पिटल के वार्ड नम्बर चार में मकड़ी के जाले की खबर नमक-मिर्च लगाकर छाप दी और यह बात लेजिस्लेटिव असेंबली में पहुँच गई। हमारी तो नाक ही कट गई।

मरीज़ : अच्छा, तो आपकी नाक भी कट सकती है ? थैंक लॉर्ड। बाय द वे, अगर आपको अपनी ड्यूटी का इतना ही ध्यान होता तो यहाँ इतनी गंदगी नहीं होती। आपको तो मुझे थैंक्स देना चाहिए।

झाड़ूवाला का प्रवेश

डीन : हाँ, हाँ। मैं आपको थैंक्स देने ही आया था। मालूम है, कुछ बड़े लोग आ रहे हैं इंस्पेक्शन पर। लिखा है कि वह टी.वी. कैमरे और पेपर वालों को लेकर आज यहाँ आएंगे और वार्ड नंबर चार का जाला खुद साफ करेंगे। ओह माय गॉड।

झाड़ूवाला : लेकिन वह जाला तो मैंने अभी-अभी साफ कर दिया, डीन साब।

डीन : ओह माय गॉड। तुमने मुझसे पूछे बिना कैसे साफ़ कर दिया ? वे क्या मेरा सिर साफ करेंगे ?

झाड़ूवाला : मरीज़ से जाला साफ करने के लिए भी इनका परमीशन लेना पड़ेगा। अजीब मुश्किल है, काम करो तो डिसमिस, नहीं करो तो भी डिसमिस।

डीन : शट अप। तुम ही इसके रूट कॉज़ हो। अब क्या मुँह दिखाऊँगा मैं ? इतने छोटे से काम के लिए वे लोग यहाँ आ रहे हैं, और वह भी काम तुमने कर दिया। (नेपथ्य से फोन की घंटी की आवाज़ आती है)।

झाड़ूवाला : एक आइडिया है साब। इस हास्पिटल में तो यहाँ-वहाँ बहुत से मकड़ी के जाले हैं एक जाला निकाल कर वापस यहाँ पर लगा देते हैं। फिर वे आकर उसको निकाल लेंगे।

डीन : वंडरफुल। व्हाट एन आइडिया।

/झाड़ूवाला जाला लाने के लिए जाता है/

मरीज़ : लेकिन डॉ. साहब।

डीन : आप बिल्कुल मत घबराइए। यह हॉस्पिटल की इज्ज़त का सवाल है। थोड़ी देर की ही तो बात है।

/झाड़ूवाला जाला लेकर आता है और पुनः उसी स्थान पर लगा देता है/

डॉक्टर का प्रवेश

डॉ. : अरे सर, एक मिनट। अभी-अभी फोन आया है कि पाँच-छह दिन के बाद आकर वे जाला साफ़ करेंगे।

डीन : ऐसा है? कोई बात नहीं। इस जाले को पाँच दिनों तक यहीं लगा रहने दो और बाकी सब वार्डों के कमरों की अच्छे से सफ़ाई करवा दो।

झाड़ूवाला : ठीक है साब।

डीन : /डॉ. से/नाओ, लेट्सगो।

/डीन, डॉक्टर और स्वीपर जाते हैं/

मरीज़ : बापरे, क्या हॉस्पिटल है। इस जाले को पाँच छह दिनों तक यहीं लगा रहने दो और बाकी सब वार्डों की अच्छी तरह से सफाई करवा दो वहां। मैं ही छुड़ाता हूँ इस जाले को। मरीज़ जाले तक पहुँचने का दो-तीन बार असफल प्रयत्न करता है। उसको जोर से खाँसी आती है और वह गिरने लगता है। उसका एक हाथ जाले की ओर उठा रहता है। यह दृश्य "फ्रीज" कर दिया जाता है। प्रकाश धीरे-धीरे समाप्त होता है और नेपथ्य से आवाज़ आती है - मकड़ी . . . का . . . जा . . . ला, जा . . . ला, जा . . . ला (आवाज धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है और परदा गिर जाता है।)

□

यात्रा विवरण

पुष्पघाटी की सैर

विश्व मोहन तिवारी

मैं तो चाहता था कि आपको सीधा दिल्ली से जोशी मठ ले जाकर फिर वहाँ से फूलों की घाटी की सैर कराऊँ किंतु शिवालिक (शिवलोक) पहाड़ियों को पार कर, ऋषिकेश पहुँचने पर पता चला कि नाग टिब्बा पर्वत श्रृंखला में देवप्रयाग के पहले एक भूमि स्खलन होने के कारण सड़क बंद है। बजाय इसके कि हम ऋषिकेश में रूककर इंतजार करते कि जब सड़क खुले तब आगे जायें, हम लोक कथाओं में छिपे चंबा और टेहरी होते हुए इस भूमि स्खलन को (बाइ-पास) बचाते हुए श्रीनगर पहुँचे। टेहरी की सुंदरता कुछ पहाड़ी फूलफ्यूली सी थी, तारों सी शर्मीली और अलसी के फूल सी उदास उदास।

कश्मीर में एक कहावत है, "अन्न पोषि तेलि येलि वन पोषि" जो संस्कृत कहावत का कश्मीरी रूप है तथा इसका अर्थ है अन्न तब पोषण करता है जब वन का पोषण होता है, अर्थात बिना वन के अन्न नहीं होगा, इतना गहरा अर्थ हमारे ऋषियों को मालूम था यह बड़े अचरज की बात हो सकती है किंतु इससे भी बड़े अचरज की बात है कि इसका अर्थ हमें नहीं मालूम तभी तो उत्तर प्रदेश में पिछले चार दशकों में 43000 हेक्टेयर भूमि से वनों को नष्ट किया जा चुका है। वन के साथ पर्यावरण और उसके साथ जीवन का विनाश होता है, विकास नहीं।

श्रीनगर आदि गुरू शंकराचार्य द्वारा स्थापित नगर है तथा यहां कमलेश्वर का प्रसिद्ध मंदिर है जिसमें श्री राम ने शंकर जी की पूजा की थी, इसलिए इसका धार्मिक महत्व स्वाभाविक है। श्रीनगर से हम आगे जोशी मठ के लिए भोजन के उपरांत चल पड़े। यद्यपि पीपल कोटि पहुँचते-पहुँचते ही रात हो गई थी तथापि हम लोगों ने तय किया कि हम लोग लगभग 30 कि. मी. की पहाड़ी चढ़ाई चढ़ते हुए जोशी मठ ही जाकर विश्राम करेंगे। किंतु पीपलकोटि में देखा कि वहाँ बहुत सी बसें और कारें रूकी पड़ी थी, पता लगा कि आगे फिर एक भूमि स्खलन है और उसको बचाकर जाने का कोई रास्ता नहीं है। इसलिए रात पीपल कोटि में रुकना पड़ा।

सुबह उठकर पता लगा कि सड़क तब भी बंद थी। विश्राम गृह के बरामदे में सोचने के लिए बैठे कि क्या किया जाये। सामने पहाड़ियों के सुंदर दृश्य थे। पास वाली पहाड़ियों पर जैसे हरी मखमल बिछी थी और दूर वाली पहाड़ियाँ रजत मुकुट पहने हुए थीं। यह बर्फ जो सितंबर के महीने में छायी रहती है, लगभग स्थायी बर्फ है। सामने पहाड़ी पर वृक्षों के पास कुछ गिद्ध उड रहे थे। दूरबीन से देखने पर पता लगा कि वे "मिश्री" गिद्ध हैं, लगभग सफेद और वे "अपमार्जक" गिद्ध के नाम से भी जाने जाते हैं, हालांकि अपमार्जन गिद्ध की सारी जातियों का काम है और उनकी 'अतिजीविता' (वंश जीवन) का आधार है। दूरबीन से देखते-देखते देखा कि

एक वृक्ष पर गिद्धों का जोड़ा बैठा हुआ है। इनका रंग गाढ़ा बदामी था। देखने में भी सुंदर लग रहे थे और देखा कि उनकी चोंच के पास दाढ़ी सरीखी कोई चीज़ थी अर्थात वे 'दाढ़ियल' गिद्ध थे।

पता लगाने पर मालूम हुआ कि सड़क में जो अवरोध है उसके जल्दी खुलने की कोई आशा नहीं है। इसलिए तय किया कि अवरोध तक तो गाड़ी से जायें और उसके बाद पैदल ही पार कर आगे चलें। वहां से हैलंग कोई 10 किलोमीटर ही बचेगा और हैलंग से जोशी मठ करीब 10 किलोमीटर। हम लोग जब अवरोध तक पहुँचे तो देखा कि बड़े जोरों से काम चल रहा था। पहाड़ का एक बहुत बड़ा टुकड़ा आकर सड़क पर जम गया था। मानो कि वह यह कह रहा था "आप लोग हमारे स्वाभाविक जीवन में क्यों बाधा डालते हैं ? किंतु मनुष्य जीवट वाला जीव है और जब वह कुछ ठान लेता है, गलत या सही, तब उसे करके ही छोड़ता है। अब उसने प्रकृति के कार्य में जब जोरों से दखल देना, बिना परिणाम को ठीक से जाने, बड़े बड़े पहाडों को काटना, वनों को काटना शुरू कर ही दिया है, तब यह 15 टन का पत्थर तो कुछ घंटों में ही चूर कर दिया गया। किंतु वाहन हमको हैलंग के पास तक ही ले जा सका क्योंकि वहां फिर एक अवरोध था और उस पर कोई काम नहीं हो रहा था। हम लोगों ने पैदल ही इस अवरोध को पार किया। और उस पार कोई वाहन न मिलने के कारण पैदल चलना ही शुरू किया यद्यपि हम सभी के पास दस-बीस किलो का सामान भी था। हम लोग अलकनंदा के बाएँ तट पर पहाड़ को काट कर बनाए रास्ते पर कोई पाँच हजार फुट की ऊँचाई पर चल रहे थे वृक्षों के हरियालेपन के बीच अलकनंदा गाते हुए चल रही थी। और हम लोगों को उस वातावरण में, अब, बहुत सारे पक्षियों के गान भी सुनाई दे रहे थे लगा कि वे अलकनंदा के साथ एक समवेत गान प्रस्तुत कर रहे थे।

बायीं ओर मेरी नजर अचानक गई और देखा कि एक सुंदर चिड़िया उड़ रही थी। उसकी निराली सुंदरता का वर्णन कठिन तो अवश्य है। चिड़िया का शरीर काले रंग का था किंतु उसके पंख गाढ़े तांबे के रंग के थे और जब वह उड़ रही थी वे पंख उस काले शरीर पर गाढ़े तांबे के रंग की आभा का मंडल बना रहे थे। इस ताम्र आभा वाली चिड़िया का नाम कलगीदार मारीट (बंटिंग) है। थोड़ी दूर जाने पर एक और सुंदर चिड़िया दिखाई दी। यह चिड़िया गौरैया के बराबर की थी और उसके पंखों का रंग भी लगभग गौरैया सरीखा ही था, किंतु उसके शरीर का रंग सुंदर गुलाबी था। इस सुंदर चिड़िया को मैंने पहचान तो लिया कि यह गुलाबी कुलिंग (फिंच) है किंतु उस थोड़ी सी झलक में यह नहीं देख पाया कि इस गुलाबी कुलिंग (फिंच) ने अपनी भौंहों को सफेद रंग में रंगा था या कि इसने अपनी बाहों में सफेद छींटेदार दुप्पटा ओढ़ा था। क्या बात है कि इस तरह सुंदर पक्षी हमारी थकान को भी उड़ा देते हैं।

यह सड़क तो पहाड़ी सड़कों की तरह ही तेज घुमावदार वाली, तेज चढ़ाव वाली सड़क थी किंतु हम लोग अपने उत्साह में कहीं कहीं सड़क को छोड़, सीधा ही ऊपर चढ़ कर, फिर से वापस आकर घूमती सड़क को पकड़ लेते थे। इसी तरह हम लोग एक गाँव के बीच से गुजरे। दूसरी तरफ पहुँचने पर हमें तो बड़ी खुशी हुई और हम लोग जोशी मठ के लिए चल पड़े। जोशी मठ तक कार में जाते समय पहाड़ों से घिरी अलकनंदा के सौंदर्य का आनंद उठाया। कुटिटम (मैपल), चीड़, वन-पीपल, बाँज अदरली, आदि वृक्षों का आनंद भी उठाया किंतु पक्षियों के गाने और सौंदर्य का आनंद उतना नहीं उठा पाये जितना पैदल चलने में मिल रहा था

और हमने गौर किया कि यद्यपि उस बिरली हवा में हम पहाड़ की चढ़ाई चढ़ते हुए लगभग 10 किलोमीटर चले होंगें किंतु उसकी थकान से हम लोग दबे नहीं ।

जोशी मठ से पुष्प घाटी तो दूसरे दिन ही जाना था। उस दिन विश्राम गृह में शाम को जब बाहर खुली हवा में बैठे तो हरी-भरी पहाड़ियों से घिरे मंच पर मद्धम सुर में अलकनंदा के मधुर गान के साथ प्रगाढ़ नीले आकाश में बादलों के नर्तन को देखते हुए मन आत्म विभोर हो गया। सूरज पश्चिम की पहाड़ी की चोटी पर जैसे बैठा हुआ बादलों में से झांक रहा था। मैंने सुना, एक सुंदर गढ़वाली स्त्री अपने पति से कह रही थी "मैं कितनी भाग्यवान हूँ कि तुम मुझे इतना प्यार करते हो। तुम सुबह होते ही सूरज की पहली किरण के साथ पहाड पर चले जाते हो और वहां दिन भर काम करते हो। तुम्हें देखती हूँ कि तुम पहाड़ के मस्तक पर एक रजत किरीट पहना देते हो और तब पहाड़ कितना भव्य लगता है। इस मुकुट को पहनाने के बाद तुम मुझसे मिलने के लिए आर्द्र होकर चल देते हो और मैं देखतो हूँ कि अक्सर तुम जल्दी में तेजी से मेरे घर के ऊपर आकर बरस जाते हो और मेरी प्यास बुझा देते हो।" अचानक एक मधुर तान से मेरी तंद्रा भंग हुई और मैंने देखा कि एक पेड़ पर बहुत सुंदर पक्षी बैठा हुआ है। यह बादामी रंग की चिड़िया मादा "स्वर्गिक" चिड़िया (बर्ड ऑन पैरॅडाइज़) थी जिसका शरीर बादामी रंग का होता है, सिर कजरारे मेघ सा काला और गले में बादलों का श्याम रंग होता है। मैं अब इस इंतजार में था कि इस मादा पक्षी के लिए नर-स्वर्गिक पक्षी भी आयेगा जो कि इससे कहीं अधिक सुंदर होता है। किंतु वह नहीं आया।

अगले दिन की सुबह हमारी आशंका के विपरीत एकदम साफ थी और आसमान का नीला रंग बहुत ही सुहावना था। जोशी मठ से निकलते ही अलकनंदा को पार कर हम उसके दाहिने तट पर चलने लगते हैं और लगभग 8-10 किलोमीटर आने के बाद हमें विष्णु प्रयाग मिलता है। विष्णु प्रयाग विष्णु गंगा और धौली गंगा का संगम है। उनके बाद ही इस नदी को अलकनंदा नाम मिलता है। किंतु अधिकतर लोग विष्णु गंगा को अलकनंदा ही कहते हैं उसी तरह कि जिस तरह अलकनंदा अथवा भगीरथी को गंगा। विष्णु गंगा की घाटी में आते ही हिमालय की विशालता के दर्शन होते हैं। यहाँ की चट्टानें विशाल पत्थरों की बनी हुई ठोस और कठोर, कर्णप्रयाग, देव प्रयाग या नंद प्रयाग जैसी नहीं जो कि रेत और गोल पत्थरों से मिल कर बनी हैं। यहां हमें पृथ्वी की अनंत शक्ति का आभास होता है कि वह कैसे अपनी शक्ति से इतने विशाल अनंत भार वाली चट्टानों को जैसे खिलवाड़ में उलट-पलट देती है।

लगभग 40 मिनट में हम गोबिंद घाट पहुँच गये। और वहां से फिर पैदल हमने अलकनंदा को पार किया और लक्ष्मण गंगा के दाहिने तरफ पहुँच गये। गोबिंद घाट से चलते ही लक्ष्मण गंगा की घाटी का सौंदर्य चिदाकाश में छाने लगता है। वृक्षों में सबसे पहले तो दरली ज्यादा मिलता है और जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते हैं वैसे-वैसे वन पीपल की अधिकता बढ़ती जाती है। बीच-बीच में बुरांश वृक्ष भी मिलते हैं। लाल फूल वाले बुरांश या सफेद फूल वाले बुरांश यहां ज्यादा होते हैं। बुरांश के फूल बहार के मौसम में मिलते है और यदि उनकी शोभा देखनी हो तो अप्रैल या मई के महीने में आना चाहिए। बुरांश वृक्ष तो गढ़वाल के जनमानस में लगभग उसी तरह समाए हैं जैसे कमल भारतीय संस्कृति में।

"बाल बुरांश शिव सिर शोबी" एक प्रचलित लोकगीत की टेक है। कोमल बुरांश शिव के सिर की शोभा है। कुछ बहुप्रचलित लोकगीत की पंक्तियाँ -"धार मा फूले बुरांश को फूल,

मैन जाणे मेरी सरू छ।' पर्वत शिखर पर बुरांश का फूल खिला है, मुझे लगा वह मेरी प्रिया है।' त्वै देखी माना बुराशी लांदी रीस'- प्रिये, तुझे देखकर तो बुरांश का फूल भी तुझसे ईर्ष्या करता है। 'मेरी मैत्यों का डाँडा बुरांश फूल्या, हिलासी जाण दे मैन।" मेरे मायके की पहाड़ी पर बुरांश फूला है, मुझे मायके जाने दो।

चढ़ते हुए हम लोगों के पास प्रकृति की सुंदरता का रस लेने का पूरा समय था। पगडंडी के किनारे बहुत सारे पौधे लगे थे किंतु उनमें एक आकर्षक पौधा था कोई पंद्रह से॰ मी॰ ऊँचा जिसकी दो डालें घूमकर एक वृत्त बना रही थीं और पत्तियां उन डालों से किरणों की तरह बाहर निकल रही थीं। इसमें हरे रंग के साथ-साथ काले रंग के भी धब्बे यहां वहां लगे थे जैसे कि चीते के बादामी बदन पर। पूछने पर पता लगा कि यह पत्ते जहरीले होते हैं। और संभवतः इसीलिए प्रकृति ने चेतावनी देने के लिए यह काले रंग के धब्बे इसमें लगा दिये हैं। ऊपर नीला आसमान लहरा रहा था। धूप तेज सी लग रही थी किंतु इतनी नहीं कि बर्दाश्त के बाहर हो। थकान के कारण थोड़ी-थोड़ी देर में रुकने की इच्छा होती थी और प्रकृति इसमें पूरी सहायता दे रही थी। कहीं फूल के बहाने, कहीं किसी वृक्ष के बहाने, कहीं किसी पक्षी के बहाने हम लोग बीच-बीच में रुककर चल रहे थे। आसमान में विशालकाय भस्म वर्णी (साइनेरियस) नामक गिद्ध उड़ रहे थे। इनकी गर्दन का रंग भस्म सा नीला होता है और ये लगभग एक मीटर लंबे होते है और बीच-बीच में गिद्ध राज भी उड़ते हुए दिखे। गिद्धों का दिखना कोई अपशकुन नहीं मानना चाहिए क्योंकि उनका होना जंगल की सफाई का काम बड़ी मुस्तैदी से होने का द्योतक है।

इतने में किसी की आवाज आई, "अरे बाप रे बिच्छू ने काट लिया"। मालूम करने पर पता लगा कि एक पौधे की पत्ती का उसकी पिंडली से स्पर्श मात्र हुआ था। और वह पौधे की पत्ती इतनी जोर से लगती है कि जैसे बिच्छू ने काटा हो। इस पौधे का नाम भी बिच्छू पौधा है। थोड़ी ही देर में एक आदमी ने एक दूसरे पौधे से पत्ती तोड़ कर उस आदमी को दिया और कहा कि वह उसे उसी जगह पर मल ले कि जहां बिच्छू ने काटा है। और उस पत्ती के मलने से उसे काफी आराम हुआ। कहीं-कहीं बीच में छोटे गाँव दिख जाते थे। उनमें ज्यादातर चौलाई या रामदाना की खेती होती है। यह लगभग डेढ़ मीटर ऊँचा पौधा होता है और इसकी साग खाई जाती है। इसका फल जो निकलता है वह बहुत ही छोटे-छोटे दाने का हल्के सफेद रंग का होता है, जिसके पकवान बना कर खाये जाते हैं। और यहाँ के लोग ठंड के दिनों में इसकी रोटी बनाकर खाते हैं क्योंकि यह रोटी उन्हें अच्छी गरमाई देती है। मैदान से व्यापारी लोग एक बोरा धान देकर, बदले में एक बोरा रामदाना ले जाते हैं। आलू जैसा कि मालूम है सर्व व्यापक है। यहाँ इतनी ऊँची पहाड़ी पर भी आलू खूब होते हैं। अनाजों में यहाँ मुंडई नाम का अनाज अधिक होता है जिसकी रोटी बनाकर खाई जाती है। यहाँ कनक भी होती है, गेहूँ को यहाँ मध्यप्रदेश की तरह कनक कहते हैं। सब्जियों में यहां बैंगन, टमाटर, भिंडी, मिर्ची आदि होती हैं। राजमाँ भी कई जगह पैदा किया जाता है। लेकिन जो पौधे सबसे ज्यादा देखने में आये वह थे भाँग के। सारे रास्ते में आधे से अधिक जमीन पर भाँग के पौधे लगे हुए थे। बीच-बीच में कहीं धतूरे के पौधे भी दिख जाते हैं। रास्ते में एक विशेष पौधा लगभग तीस से॰ मी॰ ऊँचा जिसका कि फल बहुत ही सुंदर लाल रंग का होता है दिखा। कहते हैं कि यह फल भालू को बहुत ही प्रिय है अतः इसे भालू पौधा कहते हैं।

गाँव से थोड़ी दूर चढ़ने पर एक सुंदर पीले रंग के, कुछ अलसी के फूल समान उदास फूल दिखे। इनका नाम फ्यूँर्ली है और गढ़वाल की लोक संस्कृति में इनका विशेषस्थान है। एक लोक गीत की दो पंक्तियाँ देखिए, 'कूड़ा की रेणी/डाँडू की फँयूली छई धार मा सी गैंणी'। प्रिये तू पर्वत शिखर पर झिलमिल करते तारे जैसी फ्यूँर्ली सी सुंदर है। किंतु फ्यूँर्ली के साथ बिना बुझी प्यास की, अधखिली आकांक्षाओं की भावना जुड़ी रहती है, पुराने जन्म की अधूरी लालसा के करुण अवसान का भावपूर्ण प्रतीक है फ्यूँर्ली। कथा ऐसी है कि जब एक सुंदर लड़की अपने प्रेमी से विवाह न कर सकी तो उसने आत्महत्या कर ली और उसकी मिट्टी से 'फ्यूँर्ली' के उदास फूल निकले। देखिए एक लोकगीत की कुछ पंक्तियाँ, 'फ्यूँली सी कली, कैकी बौराण छ ?/घास काटद काटद वणी द गितांग/स्वामी गेन माल चिट्ठी आई नी च/कनु निरदै होलू जू विसरदू ई तैं।" यह फ्यूँर्ली सी कली किसकी बहू रानी है ? 'जो घास काटते – काटते गीत गा रही है - "स्वामी परदेश गए हैं और उनकी चिट्ठी भी नहीं आई है।" वह कौन निर्दयी है जो इस फूल की कली को भूल गया है।' वृक्षों के प्रति प्रेम और पुण्य की भावना देखिए - 'परायो डाळो अर अपणो बाळो' - दूसरे वृक्ष और अपना बेटा - एक समान। 'नई डाळी पैरूयों जामी, देवतों की डाली - पद्म का नन्हा वृक्ष उगा है, देवताओं का वृक्ष है 'औंदी रया ऋतु मास/फूलदा रया फूल' - वसंत ऋतु आती रहे और फूल खिलते रहें'। कितनी कोमल और सौंदर्यपूर्ण इच्छा है। फूलों की ही भांति गढ़वाली लोकगीतों में पक्षियों के प्रति प्रेम झलकता है। गढ़वाली में पक्षियों को 'पोथलो' कहते हैं जिसका अर्थ होता है पुत्रल-पुत्र की तरह प्यारा। फ्यूँर्ली की तरह घुघुती (कबूतर के परिवार का एक पक्षी जिसकी बोली से 'माँ सोई है' सरीखी करुण ध्वनि निकलती है) भी नारी के उत्पीड़न का प्रतीक है। एक बालिका को उसकी विमाता ने मार डाला, उस बालिका ने दूसरे जन्म में घुघुती का रूप लिया और 'माँ सोई है' कहती हुई अपनी माँ के अभाव का दुख व्यक्त करती रहती है। इस तरह लोकगीत गढ़वाल के जीवन, मूल्यों, सुख दुख भरे यथार्थ जीवन को मार्मिक भावपूर्ण अभिव्यक्ति देते हैं।

जैसे-जैसे हम ऊपर चढ़ रहे थे वैसे-वैसे दरली, बाँज, शाल आदि के झाड़ जो कि गरम जलवायु में होते हैं कम होते जा रहे थे। वन पीपल जरूर अपनी कोशिश करके लगे हुए थे लेकिन कैल, चीड़ और देवदार वृक्षों की संख्या बढ़ती जा रही थी। बीच-बीच में कहीं कुट्टिम (मेपल) और कहीं भोज पत्र के वृक्ष भी मिलने लगे थे। जहां भी कहीं रास्ते में पानी के झरने मिलते वहां हमें सुन्दर पक्षी देखने को अवश्य मिल जाते। रास्ते में 'हाऊस स्विफ्ट' (छोटी घरेलू अबाबील) पक्षी भी दिखे। यह बहुत ही छोटा, यानि गौरैया से परिमाण में आधा, किंतु बहुत ही चपल पक्षी है। एक सुंदर पक्षी जिसने सफेद टोपी पहन रखी थी, जिसका शरीर गाढ़े बादामी रंग का था और जिसने गाढ़े नीले रंग का चोगा पहन रखा था, बड़े मजे से पानी के आस पास कीड़ों को खा रहा था। इस चिड़िया का नाम नद चैट या 'सफेद टोपी वाली लाल दुम' (रैड स्टार्ट) है। एक और चिड़िया देखने में आई और लगा कि जैसे नद चैट ने अपनी सफेद टोपी शायद नदी में गिरा दी है, इसे सीसई (अम्बियस) लालदुम (रैडस्टार्ट) कहते हैं। यहां पानी के पास चैट परिवार की चिड़ियाँ बहुतायत से मिलती हैं इनमें एक चितकबरी चैट होती है जिसकी पूंछ सफेद होती है इसकी पूंछ भी काली और सफेद रंग की होती है जबकि सफेद रंग ज्यादा और बाहर की तरफ होता है और जब यह पानी के पास बैठकर अपनी पूंछ ऊपर नीचे

बाएँ दाएँ हिलाती है तो मानो लगता है कि कोई धोबन कपड़े धो रही है इसलिए इसे आम भाषा में 'धोबन चिड़िया' भी कहते हैं। रास्ते में जब हम एक गाँव के पास से जा रहे थे तब एक सेब और फलों के बगीचे में इतने सारे सुंदर पक्षी देखे कि हम वहां चकित से खड़े रह गए। जो पक्षी सबसे ज्यादा ध्यान खीच रहा था वह था 'अग्नि टोपी वल्गलि'(फायर कैप्ड टिट) एक तो इसने सिर पर जैसे आग रखी थी और रंगों से अपने चेहरे को बहुत ही निराले ढंग से रंगा था, मुझे तो उसका मुंह ऐसा लगा कि जैसे कोई बिल्ली का बच्चा अपने मुँह को युद्धोचित रंगों में रंगकर दुश्मनों को कीड़ों की तरह चुगने की कसम खाने के लिए सिर पर आग रखे हो। एक और सुंदर पक्षी जो रास्ते भर हम लोगों को आनंद देता आया वह है हिमालय (फिंच) कुलिंग यह पीले और हरे रंग का बहुत ही सुंदर पक्षी होता है जो कि गौरैया से तीन चौथाई होता है। किंतु सुंदरता में गौरैया इसका आधा भी नहीं होगी।

रास्ते में लगभग हर दो किलोमीटर पर छोटी-छोटी दुकानें थी उन में चाय, फलों के रस और खाने के लिए पकौड़े या बिस्कुट आदि मिल रहे थे। हम लोगों को रास्ते में एक बार भोजन के अतिरिक्त तीन बार चाय के लिए रूकना पड़ा। लगभग आधे दूर चलने के बाद पानी की हल्की-हल्की फुहार शुरू हो गई थी। इन पहाड़ों पर वर्षा ऋतु में आमतौर पर, सुबह साफ होने पर भी, दोपहर के बाद बारिश हो जाती है। इस फुहार से हम लोगों के परिश्रम की गरमी ठंडी हो रही थी और चढ़ने के आनंद का आयाम बदल गया था। लगभग सभी पक्षी चुपचाप अपने घोंसलों में बैठ गए थे। मैं सुस्ताने के लिए, उस बारिश में भी एक पत्थर पर बैठ गया तो देखा कि सामने देवदार के वृक्ष की पीड़ पर एक पक्षी कुण्डलाकर चढ़ रहा था और बीच-बीच में रूक-रूक कर अपनी चोंच पीड़ के छिद्रों में लगाता जा रहा था। वह इस काम को इतनी सरलता और कुशलतापूर्वक कर रहा था कि लग गया कि यह एक विशेष पक्षी होना चाहिए - इस रेंगती चाल के कारण यह पक्षी हिमालयी किसर्पी (क्रीपर) के नाम से जाना जाता है।

ध्यान देने की बात यह थी कि गगरिया में गरमी के मौसम में एक बड़े गाँव से ज्यादा ही आबादी बनी रहती है। किंतु यहाँ काफी पक्षी दिखे क्योंकि यहां पर गगरिया से कोई पांच सौ गज की दूरी पर ही हेम गंगा और लक्ष्मण गंगा का संगम होता है और यहां पानी की अजस्र धारा बहती रहती है। एक निराली चिड़िया थी - एक कस्तूरी (थ्रश) जाति का नीला पक्षी जिसके पेट का रंग 'शाह बलूत' (चैस्टनट) या पाँगर के लाल रंग जैसा होता है इसका नाम पाँगर पहाड़ी कस्तूरी है। थोड़ी दूर जाने पर देखा कि एक सुंदर पीली चिड़िया इस ठंड में भी अपनी पूछ में सुंदर काला पंखा लगाये बैठी थी। यह पंखा जापानी पंखे सरीखा होता है और इस निराले पंखें में सफेद धारियाँ होती हैं। यह पीले पेट काले पंखे वाली चिड़िया मक्खियों, पतंगों को खाती है। क्योंकि मक्खी खाने वाली चिड़ियों की बहुत सी जातियां हैं इसलिए इसका नाम बहुत लंबा है। इनकी जातियों में भेद को बतलाने के लिए इन नामों में कई विशेषण जोड़ना पड़ता है इसलिए इस चिड़िया का नाम पीत उदर, पंखा पूछँ मक्खी भक्षक है। इस चपल चिड़िया के ऊपरी बदन का रंग बादल के समान श्याम होता है। यह चिड़िया बहुत ही सुंदर काजल लगाती है जो कि इसके पीले रंग पर बहुत शोभा देता है। थोड़ा और आगे चलने पर एक कबूतर के बराबर पक्षी दिखा जिसकी चोंच पीली थी और रंग गाढ़ा नीला था, किंतु ऐसा लगता कि जैसे उसने सफेद धारी वाला बुर्का ओढ़ लिया हो। उसके पेट में और उसके पंख पर सफेद छीटे बहुत ही सुंदर लग रहे थे। यह चिड़िया भी कस्तूरी (थ्रश) परिवार की ही है और अपने नीले रंग और अपनी

और अपनी सीटी वाली आवाज के कारण नीली सीटी वाली कस्तूरी कहलाती है। हमें इस नदी को पार करने के लिए बर्फीली ऊँचाईयों पर अतिविलंबित लय में बहने वाली हिमनद के ऊपर से जाना पड़ा। रहस्यमय हिमनद जहां पिघलते हैं वहां बहुत ही गंदे दिखते हैं क्योंकि रास्ते का जो सारा कूड़ा करकट साथ खीच के लाते हैं वह पानी के पिघलने पर साफ दिखता है।

जो फूल सबसे ज्यादा संख्या में थे उनका नाम है पोलीगोनम। इन फूलों की सुंदरता बहुत ही सूक्ष्म है क्योंकि ये आकार में बहुत ही छोटे फूल हैं। इस पौधे के सबसे ऊपर एक टहनी से बहुत सारी छोटी छोटी टहनियां निकलती हैं और उनमें ये फूल 'सम्मुख' रूप से निकलते हैं अर्थात टहनी में एक ही जगह से तीन फूल निकलते हैं और फिर थोड़ी दूर जाकर फिर तीन और फिर ऊपर जाकर फिर तीन इस तरह ये फूल बारीकी से देखने पर ही अपनी सुंदरता दिखलाते हैं किंतु दूर से देखने पर इनका बहुत ही हल्का महावरी (मैजंटा) लिए हुए सफेद रंग बहुत ही सुंदर लगता है विशेषकर कि जब सूरज की किरणें उसे चूमकर आ रही हों। यह फूल एक तरफ तो अपनी सूक्ष्म संरचना से आग्रह करते हैं और दूसरी तरफ अपनी संख्या से प्रभावित करते हैं। किंतु थोड़ी देर के बाद ही जब यह देखा कि इन्हीं फूलों की भरमार है तो जैसे इन फूलों का आर्कषण अपने आप ही पहले से कम हो गया। यह भी क्या विचित्र बात है, हमारे स्वभाव में, कि जब कोई चीज़ हमें बहुत मिलने लगती है तो उसका मूल्य गिर जाता है।

संगम अर्थात लक्ष्मण गंगा तथा हेम गंगा के ऊपर लक्ष्मण गंगा का नाम यहां पर पुष्पवती है। और इस घाटी का नाम पुष्पवती घाटी है। पुष्पवती नदी में हिम नदों से आशीर्वाद पाकर बहुत से झरने आकर गिरते हैं। अब हम लोग काफी ऊँचाई पर आ गये थे और इस ऊँचाई पर पीले और हरे रंग वाला हिमाली कुलिंग (फिंच) बहुत ही मिल रहा था और अन्य पक्षी बहुत ही कम हो गये थे। चलते-चलते हम लोगों ने एक झरने को लकड़ी के पुल से पार किया। और जैसे ही हम लोग उस पार मुड़े कि घाटी की सुंदरता और भी बढ़ गयी अब लगा कि हम वास्तव में फूलों की घाटी में आ गये हैं। यहां पर तरह तरह के फूल अपनी छटा बिखेरते हैं - यदि आप, चाहें तो मैं उनमें से कुछ के नाम गिना सकता हूँ जैसे थाईमस, पटैंट्युला, रीअम नोबील, नाग-लिली, बालसम, फॉरगेट मी नॉट, डाएन्थस, कैम्पनुला, और भिन्न-भिन्न जातियों के एनिमनीज़। यद्यपि घाटी में फूल बहुतायत से थे किंतु घाटी फूलों से पटी नहीं पड़ी थी जबकि हम फूलों की घाटी के विषय में फेंक स्माइथ या कर्नल एडमंड स्माइथ आदि के वर्णन पढ़ते हैं तो यह बिल्कुल साफ सामने आता है कि उनके जमाने में, यह निराली घाटी फूलों से पटी पड़ी थी। वे तो उत्तराखंड के हिमालय की सारी घाटियों को जानते थे और सभी घाटियों में सुंदर फूल बहुतायत से होते हैं, तब उन्होंने इस घाटी के विशेष सौंदर्य का वर्णन किया था तथा फ्रैंकस्माइथ ने इसे 'फूलों की घाटी' नाम भी दिया था। और भी लोगों से बातचीत करने पर मालूम हुआ कि विगत कुछ वर्षों से फूलों में काफी कमी आ रही है, जब कि सरकार ने इस घाटी को बचाने के लिए जानवरों के चरने पर सफल प्रतिबंध लगा दिया है, तब भी फूलों की घाटी का लावण्य कम होता जा रहा है।

वास्तव में कुछ फूल अभी भी इतने सुंदर बिछे हुए लगते हैं मानों देवताओं ने उनकी वर्षा आकाश से की हो और अपने अमृत्व व देवत्व के कारण ये फूल यहां लग गये हों। गढ़वाल

के लोगों का वास्तव में ऐसा ही पूर्ण विश्वास है। इनका विश्वास है कि लक्ष्मण मेघनाद के शक्ति अस्त्र से जब मूर्च्छित हो गए थे तब हनुमान जी उन्हें लंका में न छोड़, इसी नंदनकानन में ले आए थे और जब लक्ष्मण की मूर्च्छा संजीवनी बूटी से दूर हुई थी तब देवताओं ने यहां आकर पुष्प वर्षा की थी। उन्हीं दिव्य पुष्पों के बीज यहां जम गए और नंदनकानन के फूल आज तक हमें हनुमान जी के दिव्य गुणों की याद दिलाते हैं।

जोशी मठ आते-आते हमें कुछ और नये पक्षी दिखे जिनमें एक था कॉंस्य (ड्रैंगो) भुजंगा जिस की अधिकतर जातियां गाढ़े काले रंगों की होती हैं (इसीलिए नाम भुजंगा), किंतु दो तीन जातियों के रंग कुछ हल्के ही होते हैं। बुलबुल की भी दो नई जातियाँ देखने को मिलीं। एक तो हलके कत्थई रंग के कान वाली बुलबुल और दूसरी काली बुलबुल। आमतौर पर मैदानों में लाल पूँछ वाली बुलबुल सफेद कान वाली बुलबुल और लाल मूँछ वाली बुलबुल देखने को मिलती हैं। बुलबुल के स्वर ने हमें आकृष्ट किया। बुलबुल के स्वर में जैसे चांदी की सी गूंजने की ध्वनि निकलती है जो बहुत ही मधुर लगती है। इसी तरह कबूतर में भी हमने एक नई जाति देखी वह है बादामी कच्छप कबूतर (रुफस टर्टल डव)। इनके नाम में कच्छप विशेषण यह बतलाता है कि इनके पंखों में काले रंग का जो चौखाना होता है वह कच्छप की पीठ पर बने चौखानों से थोड़ी समानता रखता है। यह आम कच्छप कबूतर (टर्टल डव) की अपेक्षा गाढ़े रंग का होता है और इसकी लंबाई भी उसके 28 इंच के बजाय 33 सेंटीमीटर होती है। कबूतर के बारे में मैंने एक बात गौर की कि मैं हिंदुस्तान के एक कोने से दूसरे कोने में कहीं भी गया हूँ मुझे कबूतर के परिवार का कोई न कोई पक्षी हमेशा देखने को मिला है। यहाँ तक कि लगभग 4000 मीटर की ऊँचाई पर, गोमुख जैसे बर्फीले स्थान पर मात्र दो परिवार के ही पक्षी दिखाई दिए। एक तो पीली चोंच वाला चीनी कौआ (यलो बिल्ड चुग) और दूसरा हल्के स्लेटी रंग का पहाड़ी कबूतर (हिल पिजन)। इस परिवार में अपने आप को पर्यावरण के अनुकूल (एडाप्ट) करने की बडी अच्छी योग्यता होती है फिर क्या आशचर्य कि इसे शांति का प्रतीक मानते हैं। उतरते समय प्रवासी पाषाण चैट भी देखने को मिली। इसका रंग साधारण पाषाण चैट के रंग की अपेक्षा कम हल्का होता है। चैट चिडिया चपल और चुस्त होने के कारण विशेषरूप से आकर्षित करती हैं।

लौटते समय जोशी मठ में जहां मैं ठहरा हुआ था वह मकान लगभग सडक के 60 सीढ़ियां ऊपर था। पहाड में ऐसा होना कोई अचरज की बात नहीं। मैंने देखा कि माँ बेटी सुबह आठ बजे ही घास का गट्ठर लादे ऊपर आ रही थीं और उनका मकान मेरे मकान से भी ऊपर था। उनके गुलाबी चेहरे पर हल्के स्वेद कण चमक रहे थे और थकान के स्थान पर संतोष का भाव झलक रहा था। मैं उनके घर गया और औपचारिकता के बाद मैंने लड़की से पूछा कि घास का गट्ठर वह कितनी दूर से लाई थी ? तब उसने मुझे सामने की पहाडी में एक हरा भरा हिस्सा दिखलाया। निश्चित रूप से वह हिस्सा कोई 5-6 किलोमीटर दूर होगा। जब मैंने उनसे उस घास का वजन पूछा तो उन्होंने केवल मुस्करा दिया और कहा कि जितना बन सकता है वह उतना वजन ले आती है। मेरे अनुमान से प्रत्येक गट्ठर 30 कि॰ ग्रा॰ के आसपास होगा। उन्होंने बतलाया कि वे अधिकतर सुबह 6 बजे ही पहाड़ पर पहुँच जाती हैं और कोई आधा एक घंटा काटने के बाद यह गट्ठर लाती हैं। चूंकि गर्मियों में पहाड़ों में घास सूख जाती है इसलिए बरसात और पतझड़ के मौसम में घास काटकर रखना जरूरी हो जाता है। लडकी के

बात करने के ढंग से लग रहा था कि वह पढ़ी लिखी थी। इसलिए मैंने उससे पूछा कि वह क्या पढ़ रही है, तो उसका जवाब सुनकर मैं दंग रहा गया। उसने बड़े मुस्कराते हुए शांत स्वर में कहा, 'एम.ए. पॉलिटिकल साइंस'। मैंने उसे अचरज भरे स्वर में कहा कि तुम्हें एम.ए. करने के साथ यह काम भी करना पड़ता है तो उसने मात्र मुस्करा दिया। फिर मुझे उन्होंने अपने घर के अंदर बुलाया और मैंने देखा कि आम तौर पर दिखने वाले मकान के विपरीत उनका मकान बहुत ही साफ सुथरा था।

तेजी से आधुनिकीकरण करने के जो परिणाम हैं उनमें एक ओर तो घाटी और पहाड़ की सुंदरता का तेजी से ह्रास हो रहा है तथा परिणामस्वरूप पर्यावरण का संतुलन बिगड़ रहा है और दूसरी ओर लोगों में असंतोष, आपाधापी और भोग संस्कृति के घातक परिणाम फैले रहे हैं।

□

मानिनी

वीरेंद्र सक्सेना

मैने कभी नहीं सोचा था कि किसी जगह वे अचानक इस तरह मिल जायेंगे और पास आकर बातचीत करने लगेंगे। यों मैंने उन्हें गेट पर ही देख लिया था, लेकिन वे जरा आगे थे और उनकी पीठ हमारी ओर थी। मुझे कुछ शक भी हुआ था - कहीं यह धर्मेंद्र तो नहीं। और इसी कारण में दाहिनी सड़क पर पहले मुड़ गया था। पत्नी से बहाना किया था -- 'पहले थोडा, इस तरफ देख लें।'

बच्ची के कारण हमारी चाल धीमी थी। पत्नी उसे गोद में लिये-लिये थक गई थी और अब, मुझसे ले लेने को कह रही थी, मैंने इधर-उधर नज़र डालकर कह दिया - "आओ, थोड़ी देर घास पर बैठें।" आगे बढ़ने से पहले मै उन्हें सामने से देखकर भ्रम दूर कर लेना चाहता था।

लेकिन शायद उन्होंने पहले देख लिया - सामने से। पत्नी थर्मस से दूध निकाल रही थी और मै मदद कर रहा था, तभी मैंने अपने नाम की आवाज सुनी। दृष्टि घुमाकर देखा, तो उन्हें हाथ हिलाकर 'विश' करता पाया। उत्तर में मैंने भी हाथ हिलाया तो वे निमंत्रण समझकर पास आ गये।

उनके साथ-साथ 'मेकअप' में सजी एक युवती भी आई, तो मैंने अभिवादन किया और 'बधाई हो - शादी की' कहा।

उन्होंने मुसकराकर बधाई स्वीकार की। फिर पूछा, "यहां खुसरो बाग में कैसे ? -- तुम ? -- आप तो दिल्ली में थे ? "

"अब भी वहीं हूं, शिक्षा मंत्रालय में। इलाहाबाद तो सिर्फ एक सप्ताह के लिए आया हूं - सरकारी काम से।"

"लेकिन मै तो अब स्थायी रूप से आ गया हूं। यहीं नौकरी कर ली है, यहीं से शादी----"

"तब तो बड़ा अच्छा है।" मैंने फालतू में कहा। फिर बोला - "बैठिये।"

मेरे बैठते ही वे भी घास पर बैठ गये। उनकी पत्नी पहले तो कुछ सकुचाई, फिर रूमाल बिछाकर चुपचाप बैठ गई।

वह बच्ची को गोद में लेने लगे - "क्या नाम रखा है, इसका ? "

"अभी तो 'विमी' पुकारते है ---" मुझसे पहले ही पत्नी बोल उठी।

मै परेशान हो उठा। उनके चेहरे पर भी क्षण भर को विस्मय के भाव आये-गये, फिर निःश्वास खींचकर बोले, "कभी समय निकालकर घर पर आओ। आजकल, छुट्टियों की वजह से विमला और माता जी भी आई हुई है –"

मैंने "मार्क" किया, इन्होंने जानबूझकर 'विमी' को 'विमला' कहा है। प्रगट में पूछा, "और रवींद्र भाई साहब ? "वे नहीं आये ?"

"वे तो कहीं नहीं जाते-आते। उन्हें तो बस बरेली पसंद है ---"

मै एक प्रश्न और पूछना चाहता था, लेकिन पूछा नहीं। मन में एक अजीब-सी बेचैनी और घटन भर गई थी। उन्हें भी शायद, अब बे-बात बैठना मुश्किल हो रहा था, अतः उठ खड़े हुये --- " तो भाई कब आ रहे हो घर पर ? पता नोट कर लो --"

"आऊंगा अवश्य" – मैंने मुसकराने की चेष्टा करते हुए कहा, "आपकी शादी की मिठाई भी तो खानी है अभी ..

"मेरी शादी को तो दो साल हो गये। . क्यों अंजू, कौन सी तारीख को हुई थी ?"

"सोलह मार्च।" उनकी पत्नी इस बीच पहली बार बोलीं।

" . और मेरी शादी को तो चार वर्ष हो गये। दो वर्ष से अधिक की तो यह बच्ची ही है --" मैंने जानबूझ कर 'विमी' को 'बच्ची' कहा।

"मुझे मालूम है।" मुझे लगा वह 'मालूम' की जगह पहले 'याद' बोलने वाले थे, लेकिन सावधान हो गये है।

चलने से पहले, एक बार फिर, उन्होंने आत्मीयता से हाथ मिलाया और बच्ची को ग्यारह रूपये दिये । मेरी पत्नी, जो अब तक बोर हो रही थी, इससे खुश हो गई और उन्हें दिल्ली आने का निमंत्रण दे डाला। लेकिन उनकी पत्नी शायद, इस 'बरबादी' पर रुष्ट हो गई। उसने चलते समय "नमस्कार" तक नहीं कहा।

धर्मेंद्र के घर मैं अकेला ही गया। पत्नी, उनकी पत्नी के व्यवहार से असंतुष्ट थी, अतः किसी प्रकार भी जाने को सहमत नहीं हुई। लेकिन जब मैं पहुंचा तो धर्मेंद्र घर पर नहीं थे, शायद आफिस से आ नहीं पाये थे। 'नेमप्लेट' पढ़कर और बाहरी कमरे को खुला देखकर मैं सीधा उसमें घुस गया था, तो सामने 'विमी' को ही बैठा पाया।

विमी भी शायद, मुझे यों अचानक आया देख, एक पल को ठगी-सी रह गई। उसके चहरे के विस्मय-भाव से मुझे लगा कि कदाचित धर्मेंद्र ने उसे, इलाहाबाद में मेरी उपस्थिति के बारे में अभी नहीं बताया है। विमी के साथ उस समय एक लड़की और भी थी, उसी ने पहले मौन भंग किया – "आइये, बैठिए। किससे मिलना है आपको ?"

"मि. धर्मेंद्र घर में नहीं हैं क्या ?" उस लड़की को उत्तर देकर मैंने विमी की ओर देखा।

"भैया आते ही होंगे" विमी तब तक संयत हो गई थी। अपनी सहेली का परिचय देकर बोली – "अकेले ही आये हैं क्या ? सामान कहां है ?"

"इस समय तो अकेला ही हूँ" – उसकी सहेली की उपस्थिति के कारण औपचारिक होना पड़ा – "आप-सब को देखने की तबीयत हो आई। माता जी कहां हैं ?"

"अंदर हैं, बुलाती हूं।" कहकर वह भीतर चली गई।

"आप विमला जी के भाई के साथ पढ़े हैं क्या ?" -- उसकी सहेली ने उत्सुकतावश पूछा।

"उनके भाई के साथ नहीं, स्वयं विमला जी के साथ पढ़ा हूं – "मुझे लगा मुझे इस समय विमी या विमला नहीं," विमला जी ही बोलना चाहिए।

माता जी आकर बैठीं, तो औपचारिकता की परिधि कुछ टूटती-सी लगी। कुशल-समाचार से लेकर उन्होंने पिछले पांच वर्षों का इतिहास तक पूछ डाला। यह जानकर कि मैं इलाहाबाद, परिवार सहित आया हूं, लेकिन 'बच्चों' को उनके पास नहीं लाया, उन्होंने इतने उलाहने दिये कि मुझसे क्षमा मांगते भी न बनी। हारकर मुझे वचन देना पड़ा कि वापस जाने से पहले एक बार अवश्य उन्हें 'बच्चों' से मिलवाऊंगा – चिंता न करें। इस पर उन्होंने कहा कि यदि मैंने अपना वचन तीन दिन के अंदर पूरा न किया तो वे स्वयं रिक्शा करके किसी दिन मेरे होटल आ जायेंगी। मैंने उनके कथन को बीच से पकड़कर थोड़ी-सी 'वक्रता' ला दी – 'किसी दिन क्यों ? अभी चलिये न, और जब तक मैं रहूं, तब तक साथ ही रहिये। मुझमें और धर्मेंद्र में कोई अंतर क्यों समझती हैं ?"

उनकी आंखें स्नेह से छलछला आईं – "मैं कहां अंतर समझती हूं ? लेकिन ऐसे मेरे भाग्य ही कहां हुए -- ?" मुझे लगा वे बीते दिनों के बारे में सोचने लगी हैं।

यों मैं भी सोचने लगा था और इसीलिये मैंने, इस बीच कई बार दृष्टि उठाकर, दम साधकर बैठी हुई, विमी को देखा था। उसकी आंखों में इस समय सूनापन था, इसमें संदेह नहीं, लेकिन साथ-ही उनमें दृढ़ता या एक प्रकार की कट्टरता का भाव पहले जैसा ही था। यह एक अलग बात थी पहले वही 'कट्टरता' जमे हुये हिम की भांति, मेरे सानिध्य की ऊष्मा से पिघल-पिघल जाती थी और मैं अपनी सफलता पर ऐसे विभोर हो उठता था, मानो देवी का वरदान मिल गया हो।'

चित्रपट के किसी मादक गीत की भांति, मुझे तुरंत याद हो आई उस रोमांचक रात्रि की, जब हमने मैक्फैयर रोड वाले पार्क में एक दूसरे को बाहों में भरकर फुसफुसाकर कहा था – 'बारह अगस्त की रात को ... भूल नहीं जाना।' क्या विमी अपने पहले-पहले प्यार के प्रथम आलिंगन को जो मधुयामिनी से भी अधिक होता है, सचमुच भूल सकती है ?

तब धर्मेंद्र ने ही हमारी बहुत सहायता की थी। लेकिन ईश्वर भी उन्हीं की मदद कर सकता है, 'जो अपनी मदद आप करते हैं।' विमी बेचारी घर के मुखिया, रवींद्र भाई साहब, की राजी न कर सकी और उसने हार मान ली। रोते-रोते जब उसने अपने इस निर्णय की सूचना मुझे दी, तो मुझे क्रोध आना स्वाभाविक था -- "मारो गोली रवींद्र भाई साहब को। धर्मेंद्र तो हमारे साथ हैं ही और उन्होंने तुम्हारी माता जी को भी राजी कर लिया है।"

"लेकिन मैं अपने बड़े भैया को इस प्रकार नहीं छोड़ सकती। उनकी अनुमति के बिना विवाह कर लूं -- इतनी स्वार्थी मैं नहीं। आखिर उन्होंने ही तो मुझे पढ़ाया-लिखाया है। स्वयं अविवाहित रह कर सारे घर का भार अब तक उन्होंने ही तो संभाला है, पिता जी की मृत्यु के बाद से। मैं उनका अनादर कैसे कर सकती हूं ?"

मुझे उसका यह "आदर्शवाद" बिल्कुल नहीं जंचा था। और भी अधिक गुस्से से मैंने कहा था – "तो ठीक है, तुम भी उनके चरण-चिह्नों पर चलकर आजीवन कुंवारी रहो। विवाह करने की जरूरत ही क्या है ?"

"कितने स्वार्थी निकले तुम।" – जब मैंने अन्यत्र विवाह कर लिया था तो उसने एक अंतर्देशीय में यह पंक्ति मुझे लिखकर भेजी थी। लेकिन इसके उत्तर में मैंने क्रम से कई पत्र

डाले, पर उसने किसी का भी उत्तर नहीं दिया। मैंने फिर, धर्मेंद्र को पत्र लिखा कि मैं एक बार विमी से मिलकर अपनी स्थिति स्पष्ट करना चाहता हूं, तो उनका एक पंक्ति का कार्ड मिला था – "मित्र, अब इस सबसे कोई लाभ नहीं।" लेकिन उस दिन अचानक मिलने पर, उन्हीं धर्मेंद्र ने अब किस 'लाभ' की दृष्टि से मुझे घर आने का निमंत्रण दे दिया ?

माता जी के बोल पड़ने से मेरे सोच में बाधा पड़ी। वे विमी से कह रही थीं– "देख तो सही, भाभी चाय बना रही है या नहीं ? धर्म भी अब आता ही होगा।"

पर विमी अपने स्थान से उठी नहीं। कह दिया – "तुम खुद देख लो जाकर। यों भाभी से कुछ भी कहलाना बेकार है।"

वाक्य के बीच में ही, चाय की ट्रे हाथों में लिये श्रीमती धर्मेंद्र दिखाई दीं और सब लोगों को चौंका गई। 'तुम यहां बैठो बहू, मैं अब भीतर देखती हूं' कहती हुई माता जी जल्दी से उठ गईं और पर्दे के पीछे गायब हो गईं। फिर विमी उठने को हुई लेकिन शायद सहेली के कारण इरादा बदल दिया।

मैंने 'भाभी जी' को नमस्कार किया। उन्होंने मुसकराकर उत्तर दिया और कुर्सी खींचकर चाय बनाने लगीं। पहला कप तैयार करके उन्होंने मेरी ओर बढ़ाया, साथ ही विमी से कहा -- 'देखिये जनाब, आपका काम इस समय मैं कर रही हूं। सहपाठी यह आपके हैं, मेहमान भी आपके हुए, इनका 'सत्कार' तो स्वयं आपको करना चाहिये था।"

मैं नहीं समझ सका यह शुद्ध परिहास है या कटीला व्यंग्य। लेकिन शायद विमी समझ गई, उत्तर में बोली – विनोद बाबू मेरे लिए कभी मेहमान नहीं रहे। आपके घर आये हैं, तो आपके लिये होंगे। और सच पूछा जाये, तो मैं स्वयं मेहमान की हैसियत से यहां हूं, दो-चार दिन। यह तो आपका घर है, आपका नगर है, क्यों हासिनी ?

सखी बेचारी को समझ न आया कि 'नायिका' के पक्ष में क्या कहें। बातों के रूख को बदलने के लिये मैंने यों ही कहा – "नाम तो इनका बिल्कुल नया-सा है।"

हासिनी मेरे अज्ञान पर मुसकराई -- "आप इसे नया कहते हैं ? यह तो बहुत ही पुराना नाम है -- शायद 'प्रसाद' के किसी नाटक में मिल जाये।"

"नामों की बात चली, तो मुझे याद आया" – श्रीमती धर्मेंद्र ने नया झटका दिया – "आपके विनोद बाबू ने अपनी 'बेबी' का नाम 'विमी' रख रखा है – बड़ी ही प्यारी --"

"भाउ-भी। अब बस भी करोगी या नहीं ?" विमी इतना तीखा व्यंग्य बरदाश्त न कर सकी थी। चाय का प्याला नीचे रखकर वह तेजी से उठ गई।

"अच्छा भाभी। मैं भी अब चलूंगी। विमला जी से कहियेगा, फिर आऊंगी - "अच्छा नमस्ते।"

"नमस्ते।" मैंने भी जल्दी में कहा और वह तुरंत सड़क पर निकल गई।

धर्मेंद्र तो लगता है कहीं चले गये। अगर सिनेमा गये होंगे, तब तो 10 बजे आयेंगे। मैं भी अब चलूंगा -- कुछ देर के अंतराल के बाद मैंने 'भाभी' का ध्यान आकर्षित किया।

"माता जी कह रही हैं, खाना खाकर जायें -" विमी ने दुबारा कमरे में आकर सूचना दी। उसकी आंखें कुछ-कुछ लाल थीं, जैसी कि रगड़ने से हो जाती हैं। और चेहरे को पानी से धोया गया था।

"नहीं - नहीं, बहुत देर हो जायेगी" - मेरे लिए सच में अब अधिक बैठना मुश्किल था। मैं उठ खड़ा हुआ।

"देर नहीं होगी। मैं जाके जल्दी तैयार किये देती हूं, आप बैठिये तो सही -- श्रीमती धर्मेंद्र जल्दी से अंदर चली गई।

किंकर्तव्य विमूढ़ा-सा मैं, फिर यथास्थान बैठ गया। सामने विमी खड़ी की खड़ी रही। हौले से मैंने उससे कहा, "बैठ जाओ न।"

"सोचती हूं, अंदर मैं भी कुछ, काम में मदद करूं। नहीं तो, भाभी फिर ताने देंगी" -- वह खड़ी ही रही।

"कुछ देर बाद चली जाना" -- मेरे दुबारा आग्रह पर वह साड़ी संभालती हुई बैठ गई।

"कुछ कहना है आपको ?" कुछ देर बाद उसने मौन भंग किया।

"कुछ खास तो नहीं -" सीधे प्रश्न से मैं अचकचा गया था, अत: कहा, "तुमसे एक बार मिलने की इच्छा अवश्य थी -"

"अब तो पूरी हो गई होगी।"

"क्या तुम्हारी कोई इच्छा नहीं होती ?"

"मैं जो इच्छा करती हूं, उसके लिये प्रयत्न भी करती हूं। आपकी तरह नहीं कि मिलने की इच्छा इतने दिनों से कर रहे थे, लेकिन आये आज।"

"तुमने आने ही कब दिया ?"

"मैंने मना तो नहीं किया।"

"बुलाया भी तो नहीं कभी।"

"आज भी तो आप बिना मेरे बुलाये ही आये हैं।"

"मैंने आगे बहस करना बेकार समझा। कुछ कोमल होकर कहा - "अच्छा छोड़ो यह सब। यह बताओ, विवाह का इरादा कब है ?"

"अगर किसी का 'प्रौपोजल' लाये हैं तो निराश होना पड़ेगा। मेरा अभी इस बारे में कोई इरादा नहीं" - उसके स्वर का रूखापन पूर्ववत् था।

"तो क्या आजीवन ऐसे ही रहने का विचार है ?"

"यह तो मैंने नहीं कहा। फिलहाल मैं विदेश जा रही हूं - शिक्षा मंत्रालय का 'स्कॉलरशिप' मिला है।"

"अच्छा।" मुझे विस्मय हुआ, लेकिन मैंने उसे प्रगट नहीं किया। वातावरण के तनाव को कम करने के लिए कहा - तो 'पिया के देश' की बजाय 'वि-देश' जा रही हो। भला, कौन से देश ?"

" चेकोस्लोवाकिया।"

"बधाई हो। लेकिन क्या यह पलायन नहीं ?"

"मैं इसे 'प्रगति' भी तो कह सकती हूं।"

"सिर्फ कहने भर से कुछ नहीं हो जाता।"

"न कहने से भी कुछ नहीं होता।"

भाभी ने आकर बताया, खाना लगभग तैयार है, मुंह-हाथ धो लूं। मैंने एक गिलास पानी मांगा। वे पानी लेने चली गईं, तो मैंने जल्दी से कहा, "मैंने जो कुछ कहा, उससे मेरा आशय तुम्हें दुखी करने का नहीं था। विमी, यकीन मानो, मैं अब भी तुम्हारी भलाई ही चाहता हूं।"

"शुक्रिया। लेकिन मैंने भी आपका बुरा कब चाहा ? और अब मेरी एक अंतिम इच्छा है, मानेंगे ?"

"क्या ?" मैं जानने को उत्सुक था।

"विनोद।" उसने कुछ रूककर कहा -- "मैं चाहती हूं कि चाहे जहां रहूं और चाहे जिस हालत में रहूं, लेकिन अब तुम मुझसे मिलने या बात करने की कोशिश कभी न करना - बस"।

मेरा मन हुआ उसे अंक में भर लूं और लिपट कर रो पड़ूं। इसकी स्मृति में मैंने अपनी बच्ची का नाम तक वही रख लिया है - अब इसे कैसे भूल सकूंगा। प्रगट में कहा - बारह अगस्त की भांति आज की तारीख भी याद रहेगी।"

उसके पास 'उत्तर' नहीं था। कुछ देर निरूत्तर रही, फिर निःश्वास खींचकर बोली, "चलो अंदर चलें - पानी वहीं मिल जायेगा।" और बिना कुछ कहे मैं उसके पीछे हो लिया।

अगले दिन माता जी को लेकर धर्मेंद्र होटल के कमरे पर आये। साथ में उनके, मेरी बच्ची के लिए कुछ कपड़े एवं टॉफियां थीं, जिन्हें देखकर मेरी पत्नी ने कहा - "यह सब किसलिये ?"

"यह तो कुछ भी नहीं है। थोड़ा सा अपनी नातिन को बहलाने के लिये है। तुम्हारे लिये तो मैं जल्दी में कुछ ला ही न सकी।" माता जी का स्वर गीला-सा था।

मेरे माता-पिता मुझे बहुत पहले दुनिया में अकेला छोड़ गये थे, शादी ताऊ जी ने कराई थी, अतः मेरी पत्नी ने भी सास-श्वसुर का लाड़ बिल्कुल नहीं जाना था। अतः इस समय, एक अनजान स्त्री की इतनी ममता अपने प्रति देख वह भी दयार्द्र हो उठी और जैसा कि स्वाभाविक था, आंखों में आंसू भर लाई। भीगे कण्ठ से कहा - "मैं आपके पास बंगली अवश्य आऊँगी।"

विषय बदलने के लिये मैंने पूछा - "अब आप यहाँ आ गई, तो रवींद्र भाई साहब को खाने आदि की परेशानी हो गई होगी ?---

"उनकी परेशानियां मैं आखिर कब तक दूर करती रहूंगी ? इसी उम्र में इतने चिड़चिड़े हो गये हैं कि बात-बात पर ताने देते हैं और एहसान जताते हैं। मैं तो बुड्ढी हो गई, पर विमी बेचारी उनका ख्याल रखती है। कालेज से पढ़ाकर हारी-थकी आती है, फिर सारा काम करती है, लेकिन उस पर भी बिगड़ते हैं। मेरा तो अब उनके पास मन ही नहीं लगता, किससे तो चार बातें करूं। और अब तुम विमी को भी 'बाहर' भेज रहे हो ?"

"मैं बाहर भेज रहा हूं ?" मुझे ताज्जुब हुआ था।

"और क्या नहीं। तुम्हारे दफ्तर से ही तो उसका नाम आया है।"

मैंने धर्मेंद्र की ओर देखा। मेरे असमंजस से पहले तो वे चकराये, फिर बताया -- "विमी ने तो घर पर यही बताया है कि विनोद की मदद से ही 'सिलै .शन' संभव हो पाया। शायद तुम 'इंटरव्यू बोर्ड' में रहे थे।"

"नहीं भाई," स्थिति समझकर मैंने स्पष्ट किया -- 'इंटरव्यू मेरे मंत्रालय में अवश्य हुआ होगा, लेकिन कब हुआ और किसने लिया मुझे बिल्कुल पता नहीं। मैं अभी इतना

'सीनियर' नहीं कि बोर्ड का सदस्य बनूं। विभी तो मुझसे वहां जाने पर मिली तक नहीं। न मैंने ही उसे देखा --"

"देखो तो इस लड़की का झूठ"। माता जी फूट पड़ीं। मुझसे बोलीं - "तो क्या तुम उसे अब रुकवा नहीं सकते ?"

पत्नी चाय का प्रबंध करने रेस्त्रां में नीचे चली गई थी, अतः मैंने काफी संयत होकर पूछा - "आप क्यों रोकना चाहती हैं ? बस एक साल के लिये ही तो जा रही है। अपने 'मेरिट' से 'सिलेक्ट' हुई है, जाने दीजिए।"

"और लौट कर न आई -- ?"

इस प्रश्न का मेरे पास भी ऐसा कोई उत्तर नहीं था, जिससे उन्हें सांत्वना दे सकता। ऊपर से कहा - "आप ऐसा सोचती ही क्यों हैं ?

बेरा चाय लेकर आ गया था। उसे देखकर माता जी ने अपने को कुछ संभालना चाहा और गहरी सांस लेकर चुप हो गईं। धर्मेंद्र ने अब चर्चा का समापन-सा करते हुए पूछा - "तुम्हारी विभी से इस बारे में बातचीत हुई होगी ? आखिर उसके इरादे क्या हैं ? - क्यों न तुम एक बार और समझा कर देख लो।"

"मित्र, अब इस-सब से कोई लाभ नहीं" - सहसा मेरे मुँह से निकल गया। पर तुरंत सोचा, यही बात मुझे दूसरे शब्दों में कहनी चाहिए थी।

धर्मेंद्र को भी बुरा लग गया। शायद सोचा हो, आखिर, बदला ले ही लिया। प्रगट में कहा -- "लाभ नहीं तो छोड़ो। जो होगा, देखा जायेगा।" कुछ रुककर पूछा "तुम अभी कब तक रुकोगे यहां ?"

"बस इतवार तक।" अपर इंडिया में रिज़र्वेशन है।" --

उसके बाद कुछ देर वे लोग और बैठे, पर विभी से संबंधित कोई बातचीत नहीं हुई। चलते समय पत्नी ने पूछा, "तो फिर कब आ रहे हैं, आप दिल्ली ?"

"अब तो जल्दी ही आना होगा। अगस्त में जायेगी विभी, पालम से। तभी आयेंगे हम लोग, उसे छोड़ने।" सुनकर मैं सोचने लगा कि मुझे पालम तक भी जाना चाहिए या नहीं। और यदि नहीं, तो इन लोगों से क्या कहूँगा ?

□

हास्य-व्यंग्य

इतवार का दिन

डॉ॰ रमाशंकर श्रीवास्तव

यह संडे भी एक बला है। ऊपर से मेरा यह मुहल्ला है। जैसे करेला नीम चढ़ा। कई बार संकल्प किया कि अब संडे को इतना व्यस्त नहीं रहूँगा। खाली रहने का आनंद लूंगा। ज्यादा काम करने से मानसिक तनाव बढ़ता है और तनाव में टूट जाने का खतरा रहता है। न जाने कितने कवियों और दार्शनिकों का व्यक्तित्व इसी तनाव के कारण मटियामेट हो गया। कितने रचनाकार टूट-टूटकर जिए और जी-जीकर टूटे। लेकिन मैंने सोच लिया है कि मैं नहीं टूटूँगा। आराम से जीऊँगा। इस मुहल्ले में मुझे किसी ने तोड़ने की कोशिश की तो मैं उस पर टूट पड़ूँगा। अतः इन सारी चिंताओं से मुक्ति का दिन मेरा संडे होगा।

किंतु भाग्य में राहु बैठा हो तो गुड़ को गोबर बनते देर नहीं लगती। हालांकि अब गोबर को भी बायोगैस वालों ने महंगा बना दिया है। पिछले कुछ दिनों से देख रहा हूँ कि संडे को आराम के लिए सोचना हाथी का कीचड़ में धँसना है। खाली रहने के लिए मैंने जितना ही सोचा उतना ही व्यस्त बनता गया।

पिछले रविवार को यही हुआ। सुबह आँखें खुलते ही कई काम एक साथ याद आ गए। कभी-कभी याददास्त भी बड़ी बेरहमी से अपना बदला लेने आ जाती है। संडे जैसे खाली दिन को भला इतने काम याद आ जाएंगे मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। पड़ोस में आज अखंड रामायण-पाठ था। शर्मा जी की लड़की की शादी आज ही थी। दोपहर में मुहल्ला समिति की बैठक होने वाली थी, साहनी साहब के घर एक शोक-सभा थी। पानी की मोटर ठीक करने आज एक मेकेनिक आनेवाला था। कमरे की सीलन दूर कराने के लिए आज एक आर्किटेक्ट से मिलना था। ब्रोकेज की मरम्मत कराके बीमा कंपनी के एजेंट से कुछ सलाह लेना था। एक मित्र वर्षों बाद आज सपत्नीक आने वाले थे। इसके अतिरिक्त पत्नी और बच्चों के साथ कई कामों में सहयोग करना था। आज ही के दिन मेरे मुहल्ले में सारी धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियाँ भी करवट लेने लगती हैं।

मेरा मुहल्ला छोटा है किंतु यहाँ मिलने-जुलने वाले ज्यादा हैं। कोई घंटों आकर बैठ जाता है, कोई फोन पर ऐसा चिपकता है कि कान चबाकर माथा खा जाता है। मानता हूँ कि मिलने-जुलने और बतियाने का एक खास मजा है। बिना इसके जिंदगी वीरान-सा लगती है। किंतु जब मिलने वालों का तांता लग जाय तब सारा मजा हवा बन जाता है। तब जी में यही आता है कि जाकर किसी श्मशान घाट में बैठ जाऊँ जहाँ कम लोग ही जाना पसंद करते हैं। लेकिन अपने घर को श्मशान घाट बनाया नहीं जा सकता। इतना कर सकता हूँ कि बाहर से ताला लटका दूँ या बीबी बच्चों को सिखा दूँ कि जो पूछने आए उससे कह दो घर पर नहीं हैं। अपनी रक्षा में झूठ बोलना अब धर्म संगत माना जाता है।

यही वह देश है जहाँ खाली लोग नौकरी चाहते हैं और नौकरी वाले खाली रहना चाहते हैं। नौकरी लगी नहीं कि खाली रहने की इच्छा प्रबल हो उठती है। दफ्तर में बॉस अगर ज्यादा सख्त हुआ तो मन बेचैनी से संडे का इंतज़ार करने लगता है इसलिए मैंने भी शनिवार की एक रात को अगले संडे को खाली रहने का कार्यक्रम बनाया। पत्नी को विश्वास नहीं हुआ। मैंने उन्हें समझाया कि अधिक व्यस्त रहने से स्वास्थ्य की हानि होती है। अतः संडे को दो चार घंटे ज्यादा सो लेने में ही भलाई है। यह रोज-रोज भोर में ही उठ पड़ना और पूरे घर को खांस-खंखार कर गुंजा देना, नहाना-धोना, फटाफट तैयार होना और काम धंधे में जुट जाना, इसमें कोई शाबाशी नहीं है। जुए में जुटे बैल भी कभी-कभी सिर झटककर अलग हो जाते हैं। मेरी तो समझ उन बैलों से कुछ बेहतर ही है। संडे की सुबह मैं बिस्तर पर पड़ा रहा। श्रीमती जी ने बच्चों को इस कमरे में आने से मना कर दिया था और कह दिया था कि तुम्हारे पापा आज संडे मना रहे है।

आदत के मुताबिक मेरी आँख खुली। कमरे और गली में पूरी शांति का अनुभव कर मैं फिर से सो गया। किंतु नींद की दुनिया में दुबारा जाने की तैयारी पर पानी फिर गया जब घर में रेडियो और टी॰वी॰ की आवाज़ अपने पूरे वोल्यूम में गूँजने लगी। मन में गुस्से का धुँआ अभी भर ही रहा था कि आज उठकर पहले इन बच्चों की खबर लूँगा, बिना टी॰वी॰ रेडियो के क्या ये दो चार घंटे नही रह सकते ? तभी गली से मंदिर का लाउडस्पीकर चिल्ला पड़ा, उधर से खराब साइलेंसर वाला स्कूटर भागा, फिर एक भारी ट्रक जमीन को घसकाते यों गुज़रा जैसे मेरे मकान को अगले भूकंप का रिहर्सल करा रहा हो। यह सब आज ही होना था। क्या किसी को भी याद नहीं रहा कि आज संडे है। सभी को आज ही अपने कामों की जल्दी मची है। अरे कामियों। काम ही इतना ज्यादा था तो यहाँ क्यों जन्म लिया ? बाबुओं के इस देश को बनाने में सात समुंदर पार से आकर अंग्रेजों ने इतनी मेहनत की और सौगात में संडे जैसा विश्राम दिवस देकर गए। उसी देश को कामधाम की धूप में सुखाकर तुम बर्बाद कर देना चाहते हो ?

विश्राम जीवन की चेतना है। बिना आराम के जिंदगी में जंग लग जाता है। इस जंग को हटाने के लिए कितने लोग टापुओं, पहाड़ों और जंगलों में चले जाते हैं। किंतु मेरा आराम तुमसे देखा नहीं गया। आराम क्या चीज है यह रहस्य तुम इतिहास-पुरूषों से पूछो। इसी धरती पर वाज़िद अली शाह ने आराम से जूते पहनने में अंग्रेजों को अपना अवध सौंप दिया। मैंने तो किसी को बिना एक अधेली सौंपे आराम से अपना इतवार मनाना चाहा तो वह तुम्हें नागवार गुज़रा।

क्या करता, नींद उड़ चुकी थी। कमरे से उठकर बरामदे में आज का अखबार लेकर बैठ गया। तभी एक सज्जन समाचार लेकर आए कि मेरी बहन के ससुर जी की हालत कल से खराब है। प्राण अधर में लटके हैं। आज ही जाकर उन्हें देख लेना चाहिए। उनके घर जाने की तैयारी में लगा कि पता चला कि सुपर बाजार की गाड़ी आलू-प्याज लेकर आई है। दौड़कर प्याज खरीद लाया। तभी देखा कि बिटिया स्कूल ड्रेस पहने मेरा इंतज़ार कर रही है।

मैंने पूछा - क्या बात है बेटे ? यह संडे को भी स्कूल ड्रेस ?

जवाब श्रीमती जी ने दिया – न जाने आपको क्या हो गया है। जरा-जरा सी बात अब आप भूलने लगे हैं। आज संडे है। बिटिया के स्कूल में पेरेंट्स-डे का फंक्शन है। सभी बच्चों के पेरेंट्स आज वहाँ पहुँचेंगे। आप भी जल्द तैयार हो जाइए।

मन में उलझन हुई। यह फंक्शन भी आज ही के दिन होना था। मेरे भीतर कुछ तर्क पैदा हुए लेकिन माँ-बेटी का मूड देखकर मैं चुप रहा और रिक्शे पर उनके साथ हो लिया। रिक्शा अभी दो-चार गज आगे बढ़ा था कि दो सज्जन नमस्कार करते हुए पास आ गए। एक ने संकोच से कहा - आप कहीं .....

दूसरे ने पहले को इशारे से रोका। शायद यह सोचकर कि रास्ता चलते आदमी को नहीं टोका जाता। लेकिन मेरी यात्रा को आधी टोक तो लग ही चुकी थी। मुहल्ले में नए मंदिर का निर्माण होने जा रहा था। वे लोग चंदा अभियान में निकले थे। उन्हें दूसरे संडे को आने के लिए कहकर मैंने राहत की सांस ली।

रिक्शे की रफ्तार कुछ तेज हुई कि श्रीमती जी को अचानक कुछ याद आ गया। उनकी याददाश्त को जब झटका लगता है तब मेरे भीतर की धड़कन बढ़ जाती है।

- रिक्शे वाले, जरा रूकना। वे बोलीं।
- क्यों ? मैंने पूछा।
  वे नीचे उतर पड़ीं और मुझसे बोलीं–जरा पाँच मिनट के लिए चलिए। डाक्टर साहब को अपना दाँत दिखा लूँ।
- अभी जिस काम के लिए निकली हो वह तो कर लो।
  इतनी जल्दी क्या है।
- जल्दी क्यों नहीं है ? हफ्ते भर से दाँत-दर्द से परेशान हूँ। अपना दर्द नहीं बताती हूँ तो आप समझते हैं कि मैं बहुत सुखी हूँ ? मेरे जैसा सुख तो भगवान मेरे दुश्मन को भी नहीं दें।
  उनके सुख-दुख के दर्शन का आभास पाकर मेरी घबराहट फिर बढ़ी। किसी तरह मैंने उन्हें सुझाया -फिर दिखा लेना कभी। शाम को दिखा आना।
- संडे को शाम को डॉक्टर नहीं मिलेंगे।
- पापा, शाम में तो पिक्चर आएगी टी. वी. पर।
- इसीलिए मैं कहता था इतने काम-धंधे छोड़कर एक पेरेंट्स डे के पीछे भागना कौन सी बुद्धिमानी है। तुम अकेली भी तो जा सकती हो डाक्टर के यहाँ!

कहकर मैं चुप हो गया। किंतु मेरी चुप्पी उनकी वाणी को हमेशा संजीवनी की तरह चैतन्य बना देती है। वही हुआ। उनके चेहरे का रंग बदला और वे बोलीं - आपको तो कहीं भी मेरे साथ जाने में कंपकंपी होने लगती है। इससे तो अच्छा था शादी ही नहीं करते।

- क्यों ?
- बाल बच्चों के झंझटों से दूर रहते।
- अरे भाई, मेरा मतलब यह थोड़े है ?
- जो मतलब है वह मैं खूब समझती हूँ।
- तो ठीक है, चलता हूँ डाक्टर के यहाँ।
- नहीं, अब आप लौट जाइए और घर जाकर अपना संडे मनाइए।
- प्रिये। तुम्हें नाराज कर क्या मैं संडे मना सकता हूँ ?

- जिस दिन घर में रहते हो तुम करते क्या हो ?

मम्मी के परशुराम-संवाद से बिटिया ऊबने लगी। उधर रिक्शे वाले के अनुभव भंडार में वृद्धि हो रही थी, ये बड़े घर के लोग आपस में किस तरह लड़ते हैं।

बिटिया बोली – पापा, चलिए न स्कूल के लिए देर हो रही है।

- बेटे, अपनी मम्मी से पूछो।
- मुझसे क्यों। अपने पापा से पूछो। इनका संडे भागा जा रहा है।
- तुम समझती नहीं हो। आज बड़े बाबू भी आने वाले हैं। उनको एक सेकेंड हेंड स्कूटर .
- उनका नाम मत लो। बड़े बाबू ही क्या कम हैं ? हर संडे को आ धमकते हैं। छुट्टी के दिन भी वे अपने घर चैन से बैठ नहीं सकते।
- लेकिन उनकी बेचैनी का दोषी मैं नहीं हूँ।

बेचैनी किसे है मुझे मालूम है। कहलवाओ मत। मिसेज भसाना को भी आज ही नेवता देना था ? पता नहीं तुम्हारी आँखों को क्या हो गया है। है तो बुढ़िया लेकिन तुमको .

बस-बस! चुप करो महारानी।

मैं उनके पीछे-पीछे चला। डाक्टर के यहाँ जाकर बाहर बेंच पर बैठकर दीवार पर मनुहार करती दो छिपकिलियों को मैं देखने लगा और मेरी श्रीमती जी अंदर डाक्टर के सामने बैठी मुस्करा-मुस्करा कर बातें करती रहीं। मेरे सामने तो उन्हें सुख में भी मुस्कराना मंजूर नहीं और दाँत की पीड़ा में डाक्टर के सामने वे ऐसी प्रसन्न मूर्ती बनी बैठी थीं जैसे किसी सात बेटियोंवाली को बेटा जन्मा हो। हे प्रभु, पर पुरूषों के सामने मुस्कराने में ये औरतें इतनी उदार क्यों होती हैं। किसी का पति बनना क्या गुनाह है ?

डॉक्टर के क्लिनिक से निकलने के बाद उनका मूड बिल्कुल बदल गया था। वे रास्ते में चहकीं – जानते हो, डाक्टर साहब ने मुझसे क्या कहा! बोले आगे के ये सात दाँत आपके चेहरे की खूबसूरती के राज हैं। इनकी सफाई पर पूरा ध्यान रखिए और संडे के संडे आकर दिखा लिया कीजिए।

विवाह के बाद इस ग्यारह साल की अवधि में मैंने अपनी अर्द्धांगिनी के किस अंग की प्रशंसा नहीं की किंतु कभी भी वे इतनी प्रसन्न और उत्फुल नहीं दिखीं जितनी एक पराए डाक्टर से अपने दाँत की प्रशंसा सुनकर। प्रसन्नता प्रशंसा का प्रथम उपहार है शायद।

प्रशंसा की उस उमंग में वे स्कूल की कई मास्टरनियों से खिलखिला-खिलखिला कर मिलीं। कभी स्कूल के बच्चों के गाल छूकर, कभी उन्हें पुचकार कर, कभी किसी को हैलो कहकर, किसी को हाय! कहकर घंटे भर तक वे स्कूल के बरामदों और कमरों में चमेली की टहनी की तरह लहराती रहीं। उन्होंने कई बच्चों के स्वीट वायस और ब्रिलियेंट कैरियर की मुक्त कंठ से प्रशंसा की। अपनी बेटी को उन्होंने आज ही सुबह फटकारा था कि न जाने आगे यह क्या करेगी जो संडे को घोड़ा बेचकर इतनी देर तक सोती रहती है। उस जमात में मुझे अपनी निष्क्रिय मुस्कान अच्छी नहीं लगी। मैं भी कइयों की ममियों से मिलकर उनके हालचाल पूछने में लगा। एक महिला के सामने मेरे मुंह से निकल गया अच्छा, आप सुधा की माता जी हैं ?

पावडर-पालिश से तैयार उस प्रसन्नमूर्ति के चेहरे का रंग उड़ गया। ऐसी जिज्ञासा पर मेरी श्रीमती जी सख्त नाराज हो गई। मुझे अलग हटाकर एक कोने में ले गई जहाँ गांधी जी की फोटो लगी थी। डाँटकर बोलीं -तुम्हें औरतों से मिलने की तमीज आजतक नहीं आई।
मैं चकराया – मैंने कौन-सी गलती कर दी मैडम ?

- मिसेज चावला को तुमने क्यों कहा कि आप सुधा की माताजी हैं।
- अरे भाई, मुझे अच्छी तरह याद है और मैं उन्हें पहचानता हूँ। वे सुधा की माँ हैं।
- सो तो है, लेकिन तुमने उनको माता जी क्यों कहा ? सुधा की मम्मी कहते।
- माता और मम्मी में कोई फर्क है क्या ?
- तभी तो कहती हूँ, घास और बर्फी में फर्क की समझ तुझमें कभी नहीं आएगी।
- विचित्र बात है।
- बनते तो समझदार हो, पर हो तुम घामड़। इतनी समझ नहीं कि माता उस औरत को कहते हैं जिसकी उम्र ढल चुकी हो।
- यानी, नई उम्रवालियों को ममी ही कहना चाहिए। राइट मैडम। आइ गोट द प्वाइंट।

भेद अब समझ में आया कि कुछ लोग अंग्रेजी 'ममी' से खुश हिंदी 'माताजी' से इतने नाराज़ क्यों रहते हैं। युवती को बुढ़िया बना देने वाली हिंदी से नाराज़ महिलाओं के असंतोष का यही कारण है।

वे प्रसन्न थीं। मैं मुँह लटकाए घर लौटा। देखा दफ्तर के बड़े बाबू मेरा इंतज़ार कर रहे हैं। मुझसे बोले –लगता है, आप वह बात भूल गए। आज संडे है। वहाँ चलने की बात थी।

चलिए, चलता हूँ।

स्कूटर वाले के घर पहुँचे तो देखा पूरा घर टी॰वी॰ घेरे पिक्चर देखने में लगा था। इसीलिए आज संडे की संध्या में गली में कुत्तों को छोड़ आदमी नहीं दिखाई पड़ रहा था। उसने कहा कि आप लोग कल मंडे को आइए सौदा तय कर लिया जाएगा। किंतु हमारे बड़े बाबू पक्की बातचीत आज ही कर लेना चाहते थे। संडे उनके लिए शुभ दिन होता रहा है। संडे को ही उनकी शादी हुई थी, संडे को ही बड़े बेटे ने जन्म लिया था। संडे को ही उन्होंने अपनी नौकरी के लिए पहली सिफारिश लगाई थी। लेकिन स्कूटर वाला टीवी के सामने से उठने को तैयार नहीं था। अंत में दूसरे संडे को आने की बात करके हम लोग लौट आए।

घर लौटा तो श्रीमती जी का मूड ऑफ था। ओले पड़े – श्रीमान् जी। हातिमताई बनकर दूसरों का उपकार करने के पहले अपने घर की रोटी का इंतज़ाम कर लिया कीजिए।

आज ही गेहूँ भी पिसवाना था। कल चक्की बंद रहेगी। गेहूँ पिसाकर लौटा तो पड़ोस में मारपीट हो रही थी। वहाँ फैसला करने नहीं तो दर्शक बनकर जाने का पड़ोसी-धर्म तो निभाना ही था।

वहाँ से लौटा तो अपने ऊपर ही गुस्सा आ रहा था। आखिर इतने काम संडे को ही क्यों आ जाते हैं। सुबह से तनिक चैन नहीं। इससे तो बेहतर मेरा दफ्तर है जहाँ और कुछ नहीं, आराम तो है। बैठे-बैठे धूप खाओ, हवा पीओ, चाय की चुस्कियाँ लो और प्रत्येक कामेच्छा से मुक्त रहो। मुझ जैसे वैरागी पर भला कौन उंगली उठाएगा! और कौन ऐसा संसारी है जो

पे-डे को छोड़कर बाकी उन्तीस दिन अपने दफ्तर में वैरागी नहीं है। ऋषियों का सोचना सही था कि काम ही मनुष्य में वैराग्य पैदा करता है। हमारे यहाँ वह वैराग्य सुपर फास्ट गति से आता है।

इसलिए अब ये संडे, मंडे, ट्यूज़ डे - जितने डे हैं सभी मुझे वैराग्य की ओर खींचे चले जा रहे हैं। जी में तो आता है कि इस मुहल्ले से भी संन्यास ले लूँ। किंतु यह मुहल्ला मुझे संन्यास नहीं लेने देगा। भोग में तो दखल देता ही है, संन्यास में भी अपना हिस्सा माँगता है। अतः प्रभु मुझे सद्बुद्धि दे जिससे मैं यह निर्णय कर सकूँ कि किसे क्या दूँ और किससे क्या लूँ।

सोचता हूँ, इस लेन-देन के लिए भी संडे ही ठीक रहेगा। □

तीन कविताएं

डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

(एक)

तोड़ो. . . . .तोड़ो

तोड़ो-तोड़ो ओ स्पर्शमुक्त ! ओ महाव्यास.
विस्मृत-संकेता अंतर्भुक्ता सुधि का भ्रम
तोड़ो अवचेतन के अछोर ओ गंधपवन !
मृगजल-यात्री की द्रुत अंतस लहरों का क्रम

तोड़ो अलीक निद्रारत कुंठित सपनों को
तोड़ो स्थिर विगत-वयस्का तृष्णा की कारा
तोड़ो मुझमें हो ऊगा कुँडलाया तमिस्र
कुहरिल घाटिकाओं का अनगाया-पन सारा

तोड़ो उत्कंठित उर्वरता के बीजांकुर
ऋतु-आहृवानित स्वाती के पकने के पहले
तोड़ो शंकित दर्पण की सहमी छाँहों में
रंगीन इशारों के जकड़े अनुबंध ढले

तोड़ो पाहुन भविष्य के मृत भुजपाशों को
अन्विति से बिछुड गया जिनका आशय बुझकर
तोड़ो अनार्त गैरिक नक्षत्रों का अनुशम
तोड़ो असमय का अंतर्हीन कोष्टक दुस्तर

(दो)

देवा चौथ

गात मुग्धा के उठे सुकुमार साँचे में ढली
अर्धचित्रित रात, रंगों की सहजता में रची

चौथ की कृश चाँदनी ऐपन दरकती रेख-सी
डूबती अंतिम कड़ी के लय प्रकंपन में लची

गंध-कुंचित पीत-वेगोज्ज्वल दिशा की कोख में
ऊँघता आलोक फीके चाँद तारे ओढ़कर
अर्धजपे-अवशिष्ट पूजा-पद्म-सा आकाश सब
तैरता किस यक्ष की डूबी तिलाँजलि में उभर

लो पिघलती नींद से स्वप्निल उठानों तक घिरा
मौन अपने पंख दिव्यातीत अगणित पारता
फिर समय की नग्न निष्प्रभ देह पर चीवर तमस
गर्भ से निस्तेज 'ईश्वर' के गहरता गारता ।

(तीन)

तुम और मैं

मिट चुके होते कभी के तुम बुझे नेपथ्य में
है अचिंता का अतर्कित दिव्य अँधियारा जहाँ
डूबते जाते उन्हीं ध्वनियों, अध्वनियों में विवश
तुम जपे व्यामोह में होते बिना मेरे कहाँ ?

बाल-विधवा शांति के बंजर पड़े अवबोध-सी
सिर्फ श्रद्धा की मरी अनुगूँज दोहराती तुम्हें
अर्चनाओं की सिसकती, तिलमिलाती वृत्तियाँ
सिर्फ महिमा का फिसलता स्वप्न पहनाती तुम्हें

मैं बढ़ाकर भव्य श्वेता की सुवासित बत्तियाँ
एक निश्चेतक पुजापे से बचा लाया तुम्हें
अर्थ ले बैठो न अगणित जल्पनाओं में तुम्हीं
मैं धधकती वर्जनाओं से उठा लाया तुम्हें

प्रेत-से फैले दिगम्बर पाहनी विश्वास की
अंधताओं में तुम्हें मैंने न गड़ जाने दिया
चिर अशंकित प्रश्नता के बीच भी मैंने तुम्हें
आत्मदर्शित सत्य-सा अवदात बन जाने दिया

गर्भ दे देकर तुम्हारे हर जनमते ज्ञान को
मैं असीमा मैं तुम्हारी व्यंजना बुनता रहा
नित्यता के वृत्त के हर ऊगते उन्मेष में
मैं तुम्हारी नव्यता की सार्थता सुनता रहा

□

महाश्वेता

डॉ. विनय

तुमने यह कैसे जान लिया
कि मैंने तुम्हें बुलाया है।
मेरे नेत्र बंद थे . . . और उंगलियां
गिन रही थी . . . व्यतीत घड़ियाँ।

तुम्हें यह कैसे पता चला
कि बंद आंखों से मैं
तम्हें ही खोज रही थी
दिगंत में!

क्या तुम उस समय कहीं मेरे पास थे अदृश्य
जब मैं स्मृतियों में खोई
अपनी पीड़ा से मुक्ति की खोज में लीन थी।
जब मेरे वर्तमान की औपचारिकता
प्रताड़ित कर रही थी भीतर ही भीतर
और मैंने बिना लिखे ही
एक प्रेम पत्र लिख दिया था।

तुम नहीं थे उसका संबोधन
किंतु विषय तो तुम्हीं थे।

और तुम्हीं वह भी थे
जहां एक अदृश्य आलिंगन
मेरे संपूर्ण मन को भिगो कर
बढ़ा रहा था मुझे
एक सार्थक उपलब्धि को दिशा में ।

मैं तो जैसे संज्ञा शून्य थी
और मेरी शिराओं पर लिखा जा रहा था।

कोई नाम।
बार बार एक संकेत की तरह।
जो अंधेरे में चमक कर
पथिक को रास्ता दिखाता है।

मेरा आंतरिक संवाद तुमने कैसे सुन लिया
कैसे जान लिया कि तपस्या के ऊंचे शिखर पर
अकेला होता हुआ साधनारत मन
जीवन की कठिनताओं के बीच
एक भाव की परिक्रमा करना चाहता है।

इस ऊँचाई पर आने के बाद
जीवन यात्रा की ललक
क्या मेरा अंतर विरोध है?

और क्या माथे पर
तप के प्रभाव से झलकी शांति
एक पौरूषमय आलेख के अभाव में
संपूर्ण नहीं होगी।

क्या युग्मित हुए बिना
सार्थक नहीं होगा जीवन।

मैं ही प्रश्न कर रही थी चुपचाप
और उत्तर देता मेरा मन
कितने द्वंद्वों को उभार जाता था
कि मैं फिर से लौट जाती थी अपने वृत्त में।
सोचती थी कि
पहले और दूसरे जीवन संबंधों की असफलता
क्या मेरा ही दुर्भाग्य था।

या उनका भी
जिन्होंने अपना हाथ बढ़ा कर
फहरा दिया था शून्य में
जो नहीं संचित कर पाए थे शक्ति
कि अवरोधों को तोड कर
स्वयं भू मार्ग पर चल सकें।

और अब, जब कि
तुमने मेरी सांसों के आरोह, अवरोह को
अपनी सांसों से छू दिया है
तुमने मेरी आँखों से झलकती लज्जा
अपनी पलकों पर बिठा ली है
तुमने मेरी बेचैन व्याकुलता को
अपने माथे पर चंदन की तरह लगा लिया है।
मेरे मन में उभरते भय को
लपेट लिया कवच की तरह
अपने चारों तरफ।
और गंधित स्पर्श सुख की तन्मयता
मेरे प्राणों का राग बन कर गूंज उठी।

तुम यहाँ कहीं नहीं हो
तुम यहाँ सब जगह हो!
मैं द्वंद्वमय हूँ
मैं द्वंद्वातीत हूँ पुण्डरीक!

आओ मेरे मन।
मैंने हवाओं को रोक कर
दिशाओं की दीवारें खड़ी कर ली हैं।

चारों तरफ फैली बेलें
खिलती पंखुड़ियां और धीरे-धीरे हिलती पत्तियां
धरती से उठती हुई दूर्वा
वर्षा की पहली बौछार से तप्तता छोड़ ठंडी होती गंध
मेरी अंतरंग सखियां हैं।
इनकी साक्षी में जलाई है मैंने
धूप, अगरबत्ती . . . . . कि,
तुम्हारा पथ सुगंधित हो जाए।

यह मेघों के वातायन से झांकता प्रकाश
मेरे मन का उल्लास है।
मैं इसे चारों तरफ बखेरना चाहती हूँ,
मैं चाहती हूँ कि -
तुम्हारी सांसों से संगीत जन्म ले

और मैं उसकी हर तरंग पर
अपने को भूल जाऊँ !

भूल जाऊँ कि मैंने
किसी दिन किसी दुर्बल व्यक्तित्व को
समर्पित कर दिए थे राग से भरे क्षण
टटोलती रही थी उस टूटते दर्पण में
एकनिष्ठ प्रतिभा साहस की चमक
किंतु हर बार प्रताड़ित होकर
लौट आती रही
उपालंभों से भरे संसार में।

ओह पुण्डरीक !
असत्य और मिथ्या दम्भ पर टिकी
परंपरित नैतिकताओं के बीच
मेरा संपूर्ण सत्य झुठला दिया गया था।

मैं अपने ही आहत प्यार को
बार बार मरते देखती रही
मैं देखता रहा खंडित किया जाता विश्वास
और मिटता नाम
जैसे कि वह रेत पर लिखा हो !

तब मैं केवल एक प्रश्न थी
अपनी आस्था के लिए
विश्वास और प्यार के लिए।
तुमने यह क्या किया
कि दृढ़ हो गया है विश्वास
कि तुम मुझे एक उत्तर बना कर
सत्य की तरह प्रतिष्ठित कर सकते हो
सूर्य की कक्षा में।

□

तीन कविताएं

डॉ. अनामिका

(एक)

देह-वंशी

चन्दन की सहज झुकी, मेहराबी डाल-सी ये बाँहें -
तुम्हारी बाँहें - मेरे पातंजलि -
जो कभी सिर्फ बोगाया - सी नाग होती हैं
और कभी सिर्फ - सिर्फ खुशबू - इनमें प्रार्थना है।

आंखें - जो मंदिर के भग्न पट - सी
बंद होकर भी नहीं हो बंद हो पातीं-इन्हीं में प्रार्थना है।

ओंठ जो मणिदीप हैं गहरी गुफा की,
देह - पत्थर काटकर छीना गया पथ
जहाँ मन की भोलीना जूड़ा सजाती है -
कगीदों में उलझती - सी बढ़ी जाती है अगम तक -
बस लहर - सी ।

आज इनको ही समर्पित प्रार्थना हूँ मैं -
कि अपने गंध रंध्रों में
मुझे निष्काम बजने दो
सुबह की आरती की घंटियों-सी
और अपनी नसों की तंग गलियों में
उमड़ते तीर्थकों के भाल की रोली - सनी - सी
स्वेदकण बन झिलमिलाने दो।

तुम्हारी अगरबत्ती हूँ -बिना लौ के जली जाती -
अजानी किसी कोने में
कि शायद जज्ब कर पाओ कभी तो
गंध के भी पार की ये सहज धुँधराली
धुएँ की कुछ लकीरें - शंख - सी इस तलहटी की
ओस - भीगी अंजली में!

समय का क्या है कि मेरे सारथि,
समय ही कल कर्ण के रथ-सा रूकेगा -
समय जो अब तक हमारे सजल वृंदावन में
अनजानी दिशा को दौड़ती - सी धेनुओं -सा मग्न है।

व्यस्तता भी एक चीवर है, बुरा मत मानना -
यह बाँसुरी टूटी हुई है -
तुम सुदर्शन चक्र वाले महाभारत के विवेकी कृष्ण हो
कि मैं तुम्हारे पाँव छूती हूँ -

तुम्हारी बाँसुरी का स्वप्न अपने गर्भ में धारण किए
मैं पार यमुना के चली जाऊँ तो मेरे नाम पर तुम
एक छोटी नाव पत्तों की बहा देना -
अधर से फूँककर -
इस देहवंशी -सी।

(दो)

हिमदीप

चिड़िया तो चरणामृत जूठा कर गयी, प्रभु,
पाँवों में रोली की मेंहदी कत्थई, प्रभु,
कुंडलिनी में कैसा गूँजा वह शंखनाद -
किसने मन-मंदिर की घण्टी आ छुई, प्रभु!

रोम-रोम में पिघली यादों के कोरस - सा
जगा गया कौन मधुर - मधुर सामगान नया,
ऐसे क्यों बिना हिचक, बच्चों-सी पाँव पटक
मचल गयी इच्छा की बेल छुईमुई, प्रभु!

आंधी है, कैसी यह आंधी है बेमतलब
झटके, बेखटके - से आयी - सी, छायी-सी,
बदली यह संस्कार के फण फैलाए - सी,
शिवलिंगों पर सुलगी बाती की रुई, प्रभु!

गंगाजल, दूध - शहद, पान -फूल डालो तो,

यह लौ ऊँची लेकिन ठंडी कर डालो तो,
चुप्पियाँ अगरबत्ती - सी धीरे जलती हैं --
बर्फीले दीए की हालत क्या हुई, प्रभु !

(तीन)

तुम

फोन पर तुम सिर झुकाए
यों खड़े होगे कि जैसे
किरणों का गुलाबी रिसीवर उठाए
कमल ताल का शाम चार बजे :
अधसोया, सपनीला, चिंतित, उदास और अनुपम !

दिन - भर के काम से थकी उँगली
बार - बार नंबर घुमाने में
चटकती होगी ऐसे जैसे कि चिड़िया के पंखों के नीचे का
पूरा सेया नन्हा - सा अण्डा
जिसके भीतर से बस खुली चोंच
निकली हो -
प्यासी, मासूम, बहुत सुंदर,
ललछौंह और इत्ती, बस इत्ती
ज्यों टेसू का टूसा !

ऐसे ही हो तुम -

मैं जानती नहीं तुमको ?
बोलते नहीं बनता तुमसे कुछ :
आँधी में किसलय - सी
जल्दी - जल्दी झिपती आँखों पर
मुझे साफ दिखती है :
मौन के पुल - पार बहती,
सिर पटकती नदी-सी।

इस नदी की एक बेबस भँवर हूँ मैं,
हूँ तुम्हारी ही लहर पर साथ बह पाती नहीं।
अंतर्मुखी हूँ !

मुझे मुझमें ही धकेले डालता है काल निर्मम
बाँह मेरी बाँध धरती - सा नचाता गोल है
पर धुरी तुम हो!

तुम्ही में तो एक आदिम गुफा बनकर
रह रही हूँ,
सप्तपदियां ले नहीं पाती तुम्हारे चरण धोकर
पर तुम्हारी नाभि के अमृत में
मैं ही बह रही हूँ।

□

तीन कविताएं

डॉ. उपेंद्र रैणा

(एक)

धार

समय की धार तेज़ है
चाकू की धार पर पड़ा है जंग
दोनों के बीच खड़ा सोच रहा हूँ
कौन-सी मौत आसान है ?

(दो)

परिभाषा

फूल की परिभाषा
शायद यही है कि
उसकी खुशबू
आदमी को
लोहा होने से बचाती है।

(तीन)

सूत्रपात

कब तक मेरे हाथ काटते रहोगे
ये क्रांति मेरी रग-रग में है
कब तक मुझे लहूलुहान करते रहोगे
इसका सूत्रपात मेरे मस्तिष्क से हुआ है
आखिर तुम्हें चाहिए क्या ?

□

पांच कविताएं

सुनीता बुद्धिराजा

(एक)

सुबह जब चामर बिछी होती है
मेरे बगीचे के हरसिंगार के नीचे
तब लगता है
मैं भी कोई फूल हूँ
हरसिंगार का
सूरज आते ही
मुरझाना होगा
या किसी के पैरों को
सहलाना होगा ।

(दो)

सुबह की पहली गुहार कभी
फिर अयाचित अतिथि बन जाना
तुम क्या जानो
प्यार में एक पडाव
यह भी होता है ।

(तीन)

जाने क्यों बसंत उतरा था
होठों पर गुलाब
खिला था यहां पर एक बार
अब फिर
सब कुछ पहले जैसा है ।

(चार)

जहां शोर भी था अर्थवान
वहीं से शुरू था

हमारा अक्षरज्ञान
प्रेम का ढाई आखर पढ़ने के बाद
सार्थक
सिर्फ मौन था
वही समाप्त हुई
वर्णमाला

(पांच)

जैसे किसी मंदिर में
शंख स्वर सुनना
जैसे किसी बंधन में
अनजाने बंधना
आरंभ में सूर्य
वैसे धरती पर सूरजमुखी
वह सूर्य तुम हो-मेरे लिए
वह सूरजमुखी मैं हूँ -तुम्हारे लिए

□

मौसम : तीन स्थितियां

इंदु जैन

(एक)

ये कैसा मौसम है
कि
छाँह देने वाले पेड़
की शहतीरों से
कमरे में खून
टपकनेलगा

कि
कविता पुरस्कृत
होते ही
मेरीअपनीनज़रोंमें
खुद पर प्रश्नचिन्ह
लग गया।

(दो)

अपने ही ताप
से पिघला बरस गया
आग की फुहार सा सूरज–
दहकते कोलतार पर
भागते नंगे पैरों को
पता ही नहीं चला
मोटर सवार ने कहा
पैदल चलो तो
लू नहीं लगती!
नंगे पैर ने नहीं सुना–
वर्ना कभी भी वो मोटर
और लू से बदल लेता

रोज़ रोज़ जो पाने को
भट्टी पर
सिकता खौलता अपना
परोसा

(तीन)

बाढ़ : डूबा झोपड़ियों
के आसमान पर
हेलिकॉप्टर उड़ान भरता है।
दया के कतरे टपकाता हुआ
बाढ़ बढ़ाता हुआ

बाँस लेकर जूझ रहा है
झोंपड़ी
फिर खड़ा होने को
टीन की चद्दर खड़खड़ाती है।
छप्पर के धुएँ में
आसमानमें
आग लग जाती है।

□

दो कविताएं

ब्रजेंद्र त्रिपाठी

(एक)

तुम्हारे मिलने पर

बरसों बाद
तुम मिलीं
और लौट आये एक बार
गुजरे हुए दिन।

फिर एक बार दिखा
आकाश का नीला विस्तार
उगते हुए सूरज की अरुणिमा
चाँदनी रात का सौंदर्य

कितने दिनों बाद
खिल उठी होंठों पर
शिशु-सुलभ मुस्कान

चंद दिनों बाद
लौट जाओगी तुम
अपनी दुनिया में
और मैं लौट आऊँगा
मशीन का पुर्जा बन तेज भागती जिंदगी की कल में
फिट होने के लिए जहां नहीं होती सुबह
नहीं होती शाम
नहीं दिखता अनंत का
नील विस्तार
नहीं फूटती मुस्कान की कली।

रह जायेगी -
एक उद्देश्यहीन दौड़-भाग
और तब
तुम भी नहीं रहोगी याद।

(दो)

चलते हुए

कितना थक गया हूँ मैं
एक अंतहीन यात्रा पर
चलते-चलते
कोई मंज़िल नहीं
कोई कारवाँ नहीं
कोई हमसफ़र नहीं

एक एकांत उदासी
घेर लेती है सारी फिजाँ को
धुंध और कुहरे का चक्रव्यूह
ग्रसने लगता है मन-मस्तिष्क

कहीं चैन नहीं
कहीं करार नहीं
कहीं सुकून नहीं
लगता है -
किसी प्रेत-छाया के
पीछे-पीछे चल रहा हूँ मैं
जो छनभर दिखायी पड़ती है
छनभर में ओझल हो जाती है

पर
एक अजाना आकर्षण है
जो खींचता रहता है
हर घड़ी, हर पल
मंत्र बिद्ध सर्प-सा
औरमैं
चलता चला जाता हूँ
चलता चला जाता हूँ
चलता चला जाता हूँ

न जाने किन अंधी दिशाओं में :
एक भुतहा वीरान रहस्यमय लोक

चिकनी चट्टानें
ऊँची सपाट दीवारें
अतल
गहराइयाँ

सब कुछ सोया हुआ
एक सोया हुआ जंगल
अनंत काल से

न जाने किसका इंतज़ार है
न जाने किसकी जुस्तजू है
न जाने किसकी तलाश है

एक अजीब पिघली रोशनी
साँस लेती है
निःशब्द
काली हवाएँ दामन बचाकर
गुजर जाती हैं
चुपचाप।
जंगल खामोश ही रहता है
कुछ भी नहीं बोलता
एक मातमी धुन बजती रहती है
पृष्ठभूमि से
चुपचाप, चुपचाप।
लगता है –
एक पूरी जीवन-प्रक्रिया
ठहर गयी है
जिसमें
सब कुछ चलते हुए भी स्थिर है
सब कुछ दिखायी देते हुए भी ओझल है
एक आवाज़ है
जो सुनायी देकर भी
अनसुनी-रह जाती है।

□

भारतीय साहित्यकारों से साक्षात्कार

डॉ. प्रभाकर माचवे

भारत की सोलह भाषाओं के पचास श्रेष्ठ लेखक-लेखिकाओं से – मुख्यतः सृजनशील प्रतिभाओं यानी कवियों, उपन्यासकारों, नाटककारों, कथाकारों से – किए गए ये साक्षात्कार बहुत ही मनोयोगपूर्वक जुटाए गए हैं। प्रत्येक लेखक से व्यक्तिशः मिलकर, प्रश्न उन्हें पहले से भेजकर, उनसे कैसेट पर प्रश्नोत्तर रेकार्ड कर (जो अंग्रेजी और हिंदी दोनों में हैं), पुनः उन्हें टंकित कर, स्वयं साक्षात्कार देने वाले से स्वीकृति प्राप्त कर, बहुत ही प्रामाणिक और आधिकारिक रूप से यह परिश्रम और खोज का दुग्ध-शर्करा संयोग डॉ. रांग्रा ने हिंदी-पाठकों को दिया है।

इसमें 25 कवि हैं और 25 गद्य-लेखक – प्रायः प्रत्येक भारतीय भाषा से दो-दो लेखक अवश्य लिए गए हैं; यद्यपि डोगरी की केवल एक कवयित्री हैं। अंग्रेजी में बस दो लेखक हैं– राजा राव और निस्सीम इजीकेल। भारतीय संविधान-सम्मत 15 भाषाओं में से एक महान भाषा संस्कृत का कोई कवि या लेखक इसमें आने से रह गया है। मेरी भाषा मराठी का कोई कवि नहीं है – दोनों गद्य लेखक हैं, कथाकार और नाटककार क्रमशः गंगाधर गाडगिल और विजय तेंडुलकर। सर्वाधिक यानी आठ साक्षात्कार हिंदी से हैं – मैथिलीशरण गुप्त, सुमित्रानंदन पंत, यशपाल, महादेवी वर्मा, दिनकर, जैनेंद्र, बच्चन और अज्ञेय। ग्रंथ तैयार होते-होते इन पचास में से इक्कीस प्रतिभाएं महाकाल के गाल में समाहित हो गई हैं। इससे इन साक्षात्कारों का मूल्य और भी बढ़ जाता है।

पुस्तक की विशेषता यह है कि प्रत्येक लेखक-लेखिका के छायाचित्र और संक्षिप्त जीवन-कृतित्व के साथ-साथ, उसकी सृजन-प्रक्रिया पर साक्षात्कारकर्त्ता ने ध्यान दिया है। 'मैं इन से मिला' नामक पुस्तक में स्व. डा. पद्म सिंह शर्मा कमलेश के साक्षात्कार भी दो खंडों में छपे थे, पर वे संस्मरणात्मक हैं। डा. रांग्रा इस 'इंटरव्यू' विधा में सन् 1952 से जुटे हैं। ऐसी भेंटवार्ताओं के इनके दो संग्रह 1968 और 1978 में छप चुके हैं जिनमें क्रमशः इक्कीस और उन्तीस हिंदी-लेखकों से चर्चाएं सम्मिलित हैं। हर दशक के बाद डा. रांग्रा एक ऐसा संग्रह हिंदी को दे रहे हैं। इस बार तो इन्होंने कश्मीर से कन्याकुमारी तक सारे भारत को ही समेट लिया है। यह बड़ा ही मूल्यवान और संग्रहणीय कार्य किया है इन्होंने।

इस पुस्तक को पढ़ने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि भारतीय लेखक किसी भी भाषा में लिखता हो, उसकी मूल आत्मा बराबर उसी 'वेव लेंग्थ' पर झंकृत होती है, यानी वाद्य अलग-अलग हों तो भी राग और अलाप, तान-विस्तार एक-से हैं। कन्नड के मास्ति वेंकटेश अय्यंगार का मानना है कि 'मानव के उत्थान के लिए साहित्य बड़ा सशक्त माध्यम है। वह

मनुष्य को पशु से देवता बनाता है। मानवोन्नति के लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्ग बताए गए हैं। उनके अलावा चौथा साहित्य-मार्ग भी है। साहित्य का मार्ग सर्वोत्तम मार्ग है।' अंग्रेज़ी का लेखक होने के बावजूद राजा राव की सोच भी इसी प्रकार की है : "जो लेखक लेखन के माध्यम से मोक्ष की चेष्टा नहीं करता, वह लेखक नहीं है। मोक्ष का अर्थ है अपने को शरीर और मन के परे स्थापित करना।" बांग्ला के कथाकार ताराशंकर बन्धोपाध्याय का कहना है : "बाहरी रूपरेखा बना लेने-भर से काम नहीं चलता, वह चाहे कितनी ही सुंदर हो। शिल्पी प्रतिमा तो बना लेता है, पर वह देवी तभी बनती है जब पुरोहित उसमें प्राण प्रतिष्ठा करता है। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद ही तो हम उस प्रतिमा को शीश नवाते हैं। साहित्यकार शिल्पी और पुरोहित दोनों का काम करता है। तभी तो उसकी अनुभूति में बाहर और भीतर की यथार्थताएं एकाकार हो पाती हैं।"

इसी प्रकार, मलयालम के कवि जी. शंकर कुरूप कहते हैं : "अनश्वरता को प्राप्त करने की अभिलाषा मानव-मात्र के लिए जन्मज है। मार्ग तो कई हो सकते हैं - कठिन भी और सरल भी। अपनी-अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व के अनुसार मनुष्य इनमें से कोई एक चुन लेता है। पर कवि तो सौंदर्य एवं नादलय के मनोरम किंतु आयास-रहित मार्ग से आगे बढ़ता है और शब्दों में अपनी अंतश्चेतना को प्राप्त कर लेता है। अपनी अनुपम प्रतिभा-शक्ति की देन से वह समष्टि-हृदय को उद्दीप्त, उन्नयित और सुसंस्कृत करने में भी समर्थ होता है। पर इस लक्ष्य को साधने के लिए कवि बोधपूर्वक कुछ नहीं करता।" अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'माटीमटाल' के बारे में उडिया कथाकार गोपीनाथ महांती कहते हैं : "इसमें सर्वोदय का भाव भी है, यद्यपि वही सब कुछ नहीं है। इसमें मैंने मानव के व्यक्तित्व को ही नहीं, बल्कि मानवीय आध्यात्मिकता को भी उसकी समग्रता में चित्रित करने का प्रयास किया है। मैंने मानव को उसकी सभी पर्तों, उसके व्यक्तित्व के सभी आयामों, उसकी विभिन्न मनःस्थितियों, अनुभवों तथा बाहरी दुनिया से उसके संबंधों के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करने का प्रयास किया है।" पंजाबी-कवयित्री अमृता प्रीतम कहती हैं : 'तखलीकी अमल का चमत्कार लफ़्ज़ों की पकड़ में नहीं आ सकता। बस यही कह सकती हूं कि यह तखलीकी अमल आटे के या मिट्टी के पुतलों में ब्रह्मा की तरह फूंक मार कर जान डाल देता है।"

जब हम सन् 1970 में पश्चिम जर्मनी की डेढ़ माह की यात्रा से लौटे थे तब डा. रांग्रा ने हमसे एक साक्षात्कार लिया था जो शायद 'ज्ञानोदय' में छपा था। तभी से हमारे मन में इस विधा के बारे में दो प्रश्न उभरते रहे हैं – एक, हम किन लेखकों का चुनाव करते हैं और दो, क्या हमने उनके ग्रंथ पढ़े हैं। इस ग्रंथ में कुछ लेखक ऐसे हैं जिनका अंग्रेज़ी या हिंदी में कोई अनुवाद उपलब्ध नहीं है – तो ऐसी अवस्था में क्या होता होगा? मैं मानकर चलता हूँ कि डा. रांग्रा अंग्रेजी और हिंदी के अलावा पंजाबी और उर्दू भी जानते हैं। मसलन, तेलुगु की लेखिका इल्लिंदल सरस्वती देवी के साथ क्या हुआ होगा? जो कुछ उस देवी ने अपने बारे में अंग्रेज़ी में बता दिया, वही तो आधार मानकर चलना होगा? बांग्ला से विमल मित्र को चुनते समय हिंदी में उनकी लोकप्रियता ही आधार रही होगी। इस तरह साक्षात्कारकर्ता की अपनी सीमा और सुविधा भी चयन का आधार बनी होगी।

इस प्रसंग में एक कहानी याद आती है। के. पी. एस. मेनन अनेक देशों में भारत के राजदूत रहे हैं। उनसे 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' ने एक शरारतभरा प्रश्न किया, "आपको किस देश

की राजधानी सबसे अच्छी लगी ?" उन्होंने फ्रांसीसी लेखक शातोबियां की कहानी सुनाई। उनसे किसी ने पूछा, "आप देश-विदेश घूमें हैं। आपको कहां की सुंदरी अच्छी लगी ?" उन्होंने जवाब दिया, "महाशय, यह 'अवेलेबिलिटी' पर निर्भर हैं।" शायद डॉ॰ रांग्रा की भी यही सीमा रही है। उन्हें अपना प्रोजेक्ट नियत अवधि में पूरा करना था, यह भी एक मर्यादा रही होगी। फिर भी, भारतीय ज्ञानपीठ के अधिकांश पुरस्कार-विजेता यानी तेईस में से पंद्रह – मास्ति, ताराशंकर, सुमित्रानंदन पंत, जी॰ शंकर कुरूप, कारंत पुटप्पा, महादेवी, दिनकर, आशापूर्णा देवी, अज्ञेय, उमाशंकर जोशी, तकषि, गोपीनाथ महान्ती, अमृता प्रीतम, वीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य। शेष में से प्रायः सभी साहित्य अकादमी पुरस्कार विजेता हैं, यानी ये साक्षात्कार प्रतिष्ठित साहित्यकारों के ही हैं। हमारा सुझाव है कि डा॰ रांग्रा अब उन लोगों के साक्षात्कार भी लें जो प्रतिष्ठान-विरोधी रहे हैं। भारतीय साहित्य और दर्शन आस्तिक-नास्तिक दोनों विचार-परंपराओं का संतुलन है। उनका अगला कार्य वय में युवतर लेखकों-आलोचकों पर केंद्रित हो तो उत्तम होगा।

फिर भी जो विचार-धन इस ग्रंथ में जुटा है वह तुलनात्मक भारतीय साहित्य के अध्येताओं के लिए अमूल्य है। जीव, जगत और सृष्टि के विषय में, सौंदर्य और कुरूपता के विषय में, समाज के यथार्थ और व्यक्ति की स्वतंत्रता के विषय में इस ग्रंथ में अनेक मौलिक और महत्वपूर्ण उद्‌गार ग्रंथित हैं। डा॰ रांग्रा इस प्रकार के प्रयास के लिए हमारे साधुवाद के पात्र हैं, जबकि औसत हिंदी-पाठक अपने आस-पास और गली-मुहल्ले के लेखक से भी अपरिचित रहता है। सुना है, यह ग्रंथ अंग्रेजी में भी आ रहा है। बहुत ही काम का और संग्रहणीय संदर्भ-ग्रंथ है यह साक्षात्कार-संकलन।

☐

भारतीय साहित्यकारों से साक्षात्कार/डॉ॰ रणवीर रांग्रा/भारतीय ज्ञानपीठ/नई दिल्ली/पृष्ठ संख्या 495/मूल्य : रू 115/-

कहै कबीर सुनो भाई साधो

डॉ. गुरचरण सिंह

मध्यकालीन संत काव्य में कबीर अपने विद्रोही और क्रांतिकारी व्यक्तित्व के कारण विशिष्ट स्थान रखते हैं। सांप्रदायिकता और कर्मकांड में जकड़े लोगों ने कबीर की कठोर आलोचना की थी और कबीर ने उन सबका डटकर सामना किया था। वे पहले कवि थे जिन्होंने न्याय प्राप्त करने के लिए, सच की लड़ाई लड़ने के लिए, शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाने के लिए तथा समाज में फैली बुराइयों और कुरीतियों को दूर करने के लिए कविता को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। कबीर कट्टरता, धर्मांधता, पाखण्ड तथा धर्म में फैली कुरीतियों के विरोधी थे। वे स्थिति की तह तक जाने और उसे ज्ञान और तर्क के आधार पर परखने के पक्षपाती थे। डा नरेंद्र मोहन का नाटक "कहै कबीर सुनो भाई साधो" कबीर के ऐसे ही व्यक्तित्व पर आधारित है और उनके केंद्रीय स्वर को साथ पकड़ने का सार्थक प्रयत्न है। नाटककार कबीर को आज के परिवेश के साथ जोडता है। जो लडाई कबीर ने लड़ी थी वैसी ही लड़ाई तथा संघर्ष की आवश्यकता हम आज भी महसूस करते हैं। इस तरह कथ्य में समसामयिकता आयी है। नाटक में उभरे प्रसंग और प्रश्न हमें अपने लगते हैं।

कबीर पर कुछ नाटक हिंदी में पहले भी लिखे गये हैं। कबीर के जीवन को विषय बना कर दूरदर्शन ने एक सीरियल का प्रसारण भी किया है। फिर भी हम ऐसा अनुभव करते हैं कि कबीर के व्यक्तित्व और उसके कार्य-व्यापारों का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि उसके विविध -आयामों की खोज होनी चाहिए। नरेंद्र मोहन का नाटक "कहै कबीर सुनो भाई साधो" इस क्षेत्र में किया गया गंभीर और महत्वपूर्ण प्रयत्न है जो कबीर के जीवन के कुछ नये और महत्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित करता है।

इस नाटक में कबीर के जीवन और उसमें पनप रहे विद्रोह के भाव को नाटककार ने दिखाया है। धीरे-धीरे कबीर का व्यक्तित्व क्यों विद्रोही और क्रांतिकारी होता गया, यह नाटक इसका क्रमशः विकास हमारे सामने प्रस्तुत करता है। इस विकास को नाटककार ने इतिहास को आधार बना कर उभारा है। कबीर के विकास के पीछे मनोवैज्ञानिक कारणों की पड़ताल नहीं हुई है। कबीर किसी एक संप्रदाय में नहीं थे, न जन्म से, न कर्म और विचारों से। कबीर पर जितना अधिकार हिंदुओं का है लगभग उतना ही मुसलमानों का भी। वास्तव में कबीर न तो हिंदुओं के हैं और न मुसलमानों के। उनका संबंध समस्त मानव जाति से है। कबीर के जीवन में घटित प्रसंग, स्थितियाँ, घटनाएँ, हादसे उसमें विद्रोह के भाव को तीव्र करते जाते हैं वह सत्ता का, बुराइयों का, शोषण और उत्पीड़न का मुकाबला अहिंसात्मक ढंग से करना चाहता है। वह इसके लिए जनमत तैयार करना चाहता है। स्थितियों में बदलाव लाने के लिए कबीर अहिंसात्मक और जनतंत्रात्मक प्रणाली को अपनाता है। इसके लिए नाटककार ने कबीर की वाणी को ही प्रमाण-स्वरूप अपनाया है जिससे नाटक के केंद्रीय विचार की विश्वसनीयता बढ़ गयी है।

नरेंद्र मोहन कबीर को उनके समय तथा स्थितियों में रखकर परखना तथा उसके दर्शन की पुनर्व्याख्या करना चाहते है । नाटककार ने इतिहास के ऐसे प्रसंगों तथा स्थितियों को चुना है जो कबीर के संघर्षशील व्यक्तित्व को स्पष्ट कर सकें । नाटककार ने बोधन और बिजली खाँ को नाटक में इसीलिए स्थान दिया है । इन दोनों पात्रों के माध्यम से नाटककार कबीर के विचारों तथा उसके जुझारू व्यक्तित्व को उभार सका है ।

इस नाटक का एक महत्वपूर्ण पात्र है - रमजनिया । वह उस काल की प्रसिद्ध नर्तकी थी । जो बाद में कबीर की शिष्या हो गयी थी । कबीर के विरोधियों ने दोनों के संबंधों को लेकर अनेक अफवाहें फैलायीं । सत्ता ने भी इन अपवाहों का सहारा ले कबीर के खिलाफ धुँआधार प्रचार किया परंतु कबीर के उदात्त चरित्र पर इस सबका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । नाटककार ने रमजनिया के चरित्र को उभार कर उसे देवी के स्तर पर पहुँचा दिया है । नाटककार नाटक में रमजनिया की चरित्रगत विशेषताओं का वर्णन कुछ संवादों के माध्यम से करता है । एक स्थान पर कोतवाल कहता है - "सुना है, तुम उसकी रखैल हो ?" उत्तर में रमजनिया कहती है - "मुझे कुछ भी कह लो । पर उसे कुछ कहना आसमान पर थूकने जैसा है । वह पहुंचा हुआ फकीर है, उसे अल्लाह का दीदार हासिल है ।" नरेंद्र मोहन ने उसे कबीर की शिष्या के रूप में ही ग्रहण किया है । नाटक का समापन रमजनिया के भाव-पूर्ण नृत्य के द्वारा होता है, जब वह स्थिति को बिगड़ते देखकर अचानक नाचना प्रारंभ करती है । सभी उसके नृत्य में तन्मय आपसी वैरभाव को भूल झूमने लगते हैं और धीरे-धीरे कबीर के पक्ष में होने लगते है । ऐसा लगता है जैसे झूठ और छद्म की दीवार आँखों के आगे से हट गयी हो और लोग सच्चाई को देखने लगे हों । इससे स्पष्ट हो जाता है कि मुल्ला और पण्डित, सत्ता और जनता हृदय से कबीर के विचारों-भावों के समर्थक हैं पर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कबीर का विरोध करते हैं । नरेंद्र मोहन ने रमजनिया का सुंदर नाटकीय प्रयोग किया है ।

गायक-गायिका का प्रयोग नाटककार ने सूत्रधार के रूप में किया है । वे नाटक की पृष्टभूमि को सामने रखते हैं, कथ्य को विस्तार देते है तथा नाटक का अभिन्न अंग बन कर उपस्थित होते हैं । इस दृष्टि से नाटककार ने "सूत्रधारों" की रूढ़ि का इस्तेमाल नये ढंग से किया है ।

नाटक का प्रारंभ गायक-गायिका से होता है । वे नौटंकी शैली में कबीर के व्यक्तित्व तथा आज के युग में उस जैसे क्रांतिकारी व्यक्तित्व की आवश्यकता पर बल देते हुए गाते हुए आते है । गायिका कहती हैं - "संप्रदायों-धर्मों में उसने सत्य की जोत जलाई ।" यहीं जनता उस व्यक्ति के प्रति जिज्ञासा व्यक्त करती है और गायक-गायिका लोगों को आज से छह सौ साल पहले के युग में जुलाहा पट्टी में ले जाते हैं । वे जनता को बताते है कि अत्याचार और अन्याय के लिए वे भी दोषी हैं । गायक कहता है - "तुम पर जुल्म हुए और तुमने महसूस भी किये, पर कभी उठे नहीं, उठकर तने नहीं, तन कर एकजुट नहीं हुए ।" नाटककार चाहता है कि शोषित तथा दलित वर्ग कबीर की तरह तन कर खड़ा हो जाये ।

नाटक में कबीर के जन्म या उसकी बाल्यावस्था का वर्णन नहीं है । दूसरे दृश्य का प्रारंभ नवयुवक कबीर के साथ होता है । वे ठंड से ठिठुर रहे नंगे व्यक्ति को पूरा थान तन ढकने के लिए दे देते है । कबीर की साधु-प्रवृत्ति तथा उनके मस्तमौला स्वभाव का परिचय इस घटना के साथ मिलता है । वे परमात्मा के प्रेम में डूबे है तभी नाटककार पाखण्डी साधुओं

को उपस्थित करता है । कबीर कहता है - "ठग नहीं धूर्त, पाखण्डी, लोभी और लंपट" हैं ये लोग । धर्म के नाम पर लोगों को ठगते हैं, छुआछूत का भाव फैलाते हैं । निर्भीक कबीर ने ऐसे पाखण्डियों पर जम कर लिखा है, उनका विरोध किया है, लोगों को सत्य, न्याय तथा धर्म के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित किया है । नाटक में प्रयुक्त वाणी इसकी पुष्टि करती है । कबीर के कवित्त सुन कर साधु नाराज़ होते हैं और कबीर की पिटाई करते हैं । कबीर का शिष्य बिजली खां जब उन्हें ललकारता है तो कबीर उसे समझाते हुए कहते हैं । - "ये लोग नादान हैं । ये नहीं जानते क्या कर रहे हैं ।" कबीर जानते हैं, इस तरह के साधुओं, सारहीन मुल्लाओं और तुर्कों में खास तरह की साठ-गाँठ है । कोतवाल भी उन्हें उकसाता है । कबीर के माता-पिता भी उसे समझाते हैं - "दूसरों की बातों में टाँग न अड़ाया कर, मज़हबी तकरारों में मत पड़ा कर ।" परंतु कबीर अन्याय, अत्याचार तथा असत्य को सहन नहीं कर पाते । वे सच कहने से चूक नहीं सकते । इन संवादों से उस समय की राजनीति, सत्ता की चालें स्पष्ट हो जाता है । नाटक में धीरे-धीरे तनाव बढ़ता है । मुल्लाओं पुरोहितों के विरोध के साथ-साथ कोतवाल, सुल्तान भी कबीर के बढ़ते हुए प्रभाव को दबाने के लिए कई चालें चलते हैं । सत्ता सदा से ऐसा करती आयी है । बोधन का कत्ल किया जाता है तथा कबीर को बदनाम करने की योजनाएं बनायी जाती हैं , परंतु कबीर के व्यक्तित्व के सामने कोई टिक नहीं पाता ।

साधु-संतों की आवभगत के लिए लोई का साहूकार के लड़के के पास पैसे लेने के लिए जाना और कबीर का बरसात की रात में लोई को अपने कंधे पर बैठा कर साहूकार के लड़के के पास ले जाना कुछ अटपटा लगता है । कबीर पंथी इस घटना को गर्व से सुनाते हैं । क्योंकि कोई साधारण पुरूष ऐसा कार्य नहीं कर सकता । घटना अपने ऐतिहासिक संदर्भ के बावजूद प्रभाव नहीं डाल पाती । इसी घटना को और अधिक नाटकीय अंदाज और पात्रों के अंतर्द्वंद्व के जरिये प्रस्तुत किया जा सकता था ।

कबीर के जीवन से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं को नरेंद्र मोहन ने नहीं उठाया है जैसे कि हिन्दू राजा वीर सिंह बघेला का कबीर का शिष्य बनना तथा सर्वजित और धर्मदास के घमण्ड को नम्रता और मधुरता से दूर करना आदि । दरअसल, नाटककार का उद्देश्य केंद्रीय विचार के समानांतर घटनाओं के संयोजन से रहा है ।

नाटक की सफलता मंचन पर निर्भर करती है । मंचन के समय ही नाटक की खूबियाँ या कमियाँ नज़र आती हैं । मंच की आवश्यकताओं को देखते हुए नाटक-निर्देशक को नाट्यालेख में परिवर्तन भी करना पडता है । "कहै कबीर सुनो भाई साधो" नाटक में नाटकीय घटनाओं की कमी नहीं है । नाटककार विभिन्न नाट्यशैलियों का प्रयोग करता है । नौटंकी से लेकर अधुनातन शैली का आवश्यकता इस नाटक के लिए निर्देशक अनुभव करता है । इस से स्पष्ट हो जाता है कि नाटककार को मंच, उसकी आवश्यकताओं तथा कठिनाइयों का गहरा अनुभव है । इस नाटक का ढांचा घटनात्मक है । घटनात्मक नाटक मंचन की दृष्टि से सफल रहते है, क्योंकि दर्शक घटनाओं के साथ जुड़ाव अनुभव करते हैं और उनमें जिज्ञासा बनी रहती है । घटनाएं ही कथा को आगे बढ़ाती हैं और चरित्रों को उभारती, उनके गुणों-अवगुणों को हमारे सामने रखती हैं ।

इस नाटक का कार्य-व्यापार दो स्तरों पर चलता है - एक गायक-गायिका और जनसमूह तथा दूसरा कबीर तथा उनके जीवन चरित्र से जुड़े हुए लोग, प्रसंग तथा घटनाएं ।

ऐसे नाटक के मंचन के लिए नाट्यधर्मी तथा यथार्थवादी अभिनय शैली के मिले-जुले रूप की आवश्यकता होती है।

नाटक के मंचन में यदि कोई बाधा है तो वह है - छोटे-छोटे और अधिक दृश्यों का होना। नाटककार मंच पर बाजार, कबीर का घर, गंगा का किनारा, कोतवाली, राज दरबार आदि कई कार्य-व्यापार के स्थल दिखाता है। मंच पर तेजी से दृश्य बदलना संभव नहीं है। इसके लिए मंच सज्जा की विशिष्ट शैली तथा कुशलता की आवश्यकता है।

"कहै कबीर सुनो भाई साधो" संगीतात्मक नाटक है। नाटककार ने कबीर की वाणी का प्रयोग खुल कर किया है। संगीतात्मक नाटक निर्देशक के लिए चुनौती होता है। संगीतात्मक नाटक के लिए संगीत निर्देशक की आवश्यकता भी रहती है। वाद्ययंत्रों तथा पार्श्व गायकों की भी जरूरत होती है। हिंदी मंच के लिए इतने साधन तथा धन जुटा पाना संभव नहीं हो पाता।

"कहै कबीर सुनो भाई साधो" नरेंद्र मोहन की सृजन-प्रतिभा का नाटकीय आलेख है। यहां नाटक और रंगमंच एक दूसरे के साथ घुल-मिल गये हैं। दोनों की सह-स्थिति इस नाटक को और इसकी विभिन्न प्रस्तुति-परिकल्पनाओं को विशिष्ट और सार्थक बना देती है। □

सूरीनाम
जवाहर लाल नेहरू जन्म शताब्दी

भारतीय गणतंत्र दिवस के तीन दिन बाद सूरीनाम में पं. जवाहरलाल नेहरू शताब्दी समारोह के कार्यक्रमों का शुभारंभ करते हुए भारत के राजदूत महामहिम श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने 29 जनवरी, 1989 को इस देश की राजधानी के मध्य में स्थित सूर्य मंदिर के प्रांगण में पं. जवाहर लाल नेहरू पुस्तकालय का उद्घाटन किया। नेहरू पुस्तकालय, सूर्य मंदिर और एक विशाल सभागार के निर्माण पर 5 करोड़ रूपये की लागत आई है और यह महत्वाकांक्षी परियोजना सूरीनाम के भारतवंशियों की अपने धर्म और संस्कृति के प्रति अटूट प्रेम की परिचायक है।

सूरीनाम के भारतवंशियों द्वारा आयोजित किए जाने वाले सभी समारोहों की एक विशिष्टता यह है कि यह प्रायः धर्म, संस्कृति, शिक्षा और समाज सेवा के मिले-जुले उत्सव का रूप ले लेते हैं और उनके सरल स्वभाव के अनुरूप बेहद अनौपचारिक होते हैं। इसीलिए, जवाहर लाल नेहरू पुस्तकालय के उद्घाटन के इस अवसर पर भी आयोजकों ने इस शुभ कार्य की सफलता की मंगल कामना के लिए प्रातःकाल से ही यज्ञ, हवन, कीर्तन, आदि के कार्यक्रम शुरू कर दिए।

सूर्य-मंदिर के विशाल प्रांगण में लोगों की बड़ी संख्या को देखते हुए आयोजकों नें क्लोज सर्किट टी. वी. की भी व्यवस्था कर दी थी ताकि सभाकक्ष के बाहर भी लोग पूरी कारवाई देख सके। सभा में सूरीनाम की नेशनल असेम्बली के अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्ष्मन मुख्य अतिथि थे। रक्षा मंत्री मुहम्मद शेख करीम, सार्वजनिक निर्माण और यातायात मंत्री श्री हरनारायण जानकी प्रसाद सिंह, शिक्षा मंत्री श्री फेन्सियान, संस्कृति विभाग के सचिव श्री अन्टोनियस के अलावा अनेक गण्यमान्य व्यक्ति विशेष रूप से उपस्थित हुए। श्री हरनारायण जानकीप्रसाद सिंह एवं श्री अन्टोनियस ने श्री नेहरू जी के नाम से जुड़े इस पुस्तकालय की स्थापना को सूरीनाम के सांस्कृतिक इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना कहा।

श्री जगरनाथ लक्षमन सूरीनाम के भारतवंशियों में ही नहीं अन्य लोगों के बीच भी अत्यंत आदरणीय नेता हैं और पिछले पचास वर्षो से राजनीति में और सूरीनाम के समाज में बहुत विशिष्ट स्थान रखते हैं। सभा को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि हम पं. जवाहर लाल नेहरू को याद करते हैं - केवल इसलिए नहीं कि वह हमारे पूर्वजों के देश भारत के महान नेता थे जिन पर हर भारतवंशी को गर्व है, उन्होंने महात्मा गांधी के साथ मिलकर भारत को आजाद कराया और एक ऐसे नए भारत का निर्माण किया जो आज दुनिया का सबसे बड़ा और सफल प्रजातंत्र है, बल्कि इसीलिए भी कि उन्होंने अपनी सूझ-बूझ और दूर-दृष्टि से गुट-निरपेक्षता का एक ऐसा सिद्धांत और आंदोलन चलाया कि नए आजाद हुए छोटे-छोटे देश भी किसी धनी देश या महाशक्तियों के पिछलग्गू बनने के बजाय अपनी स्वतंत्र नीति चला सकें

और अपनी अलग पहचान बनाए रख सकें। श्री लक्षमन ने कहा कि जब हमारे पुरखे भारत से सूरीनाम आए थे तो उनके पास क्या था लेकिन उनका बड़ी पूंजी, सबसे बड़ा धन था - भारत की संस्कृति जिसके बल पर हजारों कठिनाइयों के रहते भी हम आज मजबूती से खड़े है। इसी संस्कृति को मजबूत रखने में यह पुस्तकालय हमारी बहुत बड़ी मदद करेगा।

सूरीनाम की नई पीढ़ी को भारत की महान संस्कृति को समझने में सहायता मिलेगी। पुस्तकालय की स्थापना में भारत के राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह की प्रेरणा और सहयोग की सराहना करते हुए श्री लक्षमन जी ने कहा कि हमें हमेशा ही उनसे सहयोग मिला है।

नेहरू पुस्कालय का उद्घाटन करते हुए और सूरीनाम की जनता को इसे समर्पित करते हुए भारत के राजदूत श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने सूर्य-मंदिर के संस्थापकों को बधाई दी और कहा कि पं· जवाहर लाल नेहरू एक ऐसी विशाल दृष्टि और विशाल हृदय वाले नेता थे कि उन्हें किसी देश विशेष की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। दुनिया में जहां कहीं भी अत्याचार, शोषण, अन्याय या जाति-वर्ण के आधार पर भेदभाव उन्हें दिखाई देता था, वह उसका निर्भीकतापूर्वक डट कर विरोध करते थे और इसमें उन्होंने बड़ी से बड़ी शक्तियों की कभी परवाह नहीं की। भारत के राजदूत ने कहा कि दूसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका को पं· नेहरू ने अच्छी तरह देखा था, दुनिया में स्थायी शांति रहे, इसके लिए उन्होंनें बहुत सोच-समझकर गुट-निरपेक्षता के आंदोलन का सूत्रपात किया था। इस विचार की यह सफलता है कि आज सूरीनाम सहित एक सौ से अधिक राष्ट्र इसके सदस्य हैं। पं· जवाहर लाल नेहरू राजनीतिज्ञ ही नहीं, एक बहुत बड़े सर्जनशील लेखक भी थे, अतः यह उपयुक्त ही है कि इस पुस्तकालय का नामकरण उनके नाम कर किया गया है।

पुस्तकालय के अलावा, पं· नेहरू की एक आवक्ष प्रतिमा भी इसी परिसर में स्थापित की गई जिसका अनावरण असेम्बली स्पीकर श्री जगरनाथ लक्षमण ने किया।

भारत का गणतंत्र दिवस समारोह

भारत का चालीसवां गणतंत्र दिवस सूरीनाम में बड़े उत्साह से मनाया गया। सभी समाचार पत्रों, रेडियो और टेलिविजन के सभी चैनलों पर भारत की विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति, विकासशील देशों में प्रजातंत्री आदर्शों पर दृढ़ रहते हुए आर्थिक विकास की संभावनाओं के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गई थी। प्रजातंत्री मूल्यों और प्रजातंत्री सस्थाओं की पुर्नस्थापना की जिस प्रक्रिया से सूरीनाम फिलहाल गुजर रहा है, उसके संदर्भ में भारत में गणतंत्र की प्रतिष्ठा बड़ा ही महत्व रखती है।

गणतंत्र दिवस की पूर्व संध्या पर भारत के राजदूत महोदय के आवास पर आयोजित स्वागत समारोह में सूरीनाम के राष्ट्रपति महामान्य श्री राम सेवक शंकर ने इसी बात को विशेष तौर पर रेखांकित करते हुए कहा कि 1947 में आजादी के समय में ही भारत ने बहुत सूझ-बूझ के साथ अपना रास्ता चुना और इस पर चलकर इस विशाल देश को स्वतंत्रता और प्रजातंत्र का एक सुंदर उदाहरण बना दिया है। आजादी के बाद भारत के सामने असंख्य

कठिनाइयां आई लेकिन स्वतत्रंता और प्रजातंत्र के आदर्शों पर दृढ़ रहते हुए विशाल आबादी वाले इस महादेश ने उन सभी समस्याओं का सफलता पूर्वक मुकाबला किया, इसलिए यह सिद्ध होता है कि प्रजातंत्र और विकास की प्रक्रिया साथ-साथ सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है। महामान्य राष्ट्रपति ने कहा कि अंतराष्ट्रीय मंचों पर भारत ने जो भूमिका निभाई है, सूरीनाम की सरकार उसका सम्मान करती है और विशेषकर तीसरी दुनिया के देशों के हितों की रक्षा के लिए हम भारत से बड़ी आशा रखते हैं।

सूरीनाम और भारत के बीच संबंधों की शुरूआत सन् 1873 से ही हो गई थी, जब पहली बार प्रवासी भारतीय इस देश में आए। भारतीयों के आगमन के साथ ही इस देश में भारतीय जीवन पद्धति का समावेश हुआ और आज इतने वर्षों में भारत की समृद्ध संस्कृति अपने अनेक रूपों में सूरीनाम के समाज का एक अंग बन चुकी है।

भारत के राजदूत महोदय को संबोधित करते हुए राष्ट्रपति ने कहा कि आपने अपने कार्यकाल के दौरान सूरीनाम के प्रजातंत्री करण की प्रक्रिया के नए युग को बहुत निकट से देखा है। सूरीनाम में प्रजातंत्र का विकास हमारे लिए बहुत खुशी की बात है और हमें आपके देश से जो देन और समर्थन मिला है, इससे हम और भी मजबूत हुए हैं। हम इस संबंध में भारत के उपराष्ट्रपति महामान्य श्री शंकर दयाल शर्मा की सूरीनाम यात्रा का उल्लेख करना चाहते हैं जिससे हमारे देश में चल रही प्रजातंत्री प्रक्रिया को बड़ा बल और समर्थन प्राप्त हुआ।

हम अपने देश के विकास कार्य में लगे हैं, और आशा करते हैं कि हमारे दोनों देशों के बीच यह सहयोग और बढ़ेगा और हमें भारत से लगातार समर्थन मिलता रहेगा।

राष्ट्रपति महोदय ने आशा व्यक्त की कि भारत के राजदूत एवं उनके सहकर्मियों ने राजनयिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रंशसनीय कार्य किए हैं और इसी प्रकार निरंतर करते रहेंगे।

राष्ट्रपति महोदय ने, भारत के राष्ट्रपति महामान्य श्री रामास्वामी वेंकटरमण के स्वास्थ्य एवं भारत की जनता की समृद्धि की कामना व्यक्त की।

स्वागत समारोह में सूरीनाम के राष्ट्रपति एवं उनकी धर्मपत्नी के अलावा, उपराष्ट्रपति श्री हेन्क आरोन, असेम्बली अध्यक्ष श्री जगरनाथ लक्षमण के अलावा, विदेश मंत्री, गृह मंत्री, रक्षा मंत्री, न्याय मंत्री आदि सूरीनाम मंत्रिमंडल के लगभग सभी मंत्री, विधायक, सभी दूतावासों के राजनयिक, उच्च सरकारी अधिकारी तथा सभी सांस्कृतिक-धार्मिक संस्थाओं के नेताओं के अलावा अनेक गण्यमान्य नागरिक उपस्थित थे।

भारत के राजदूत महामहिम श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने उपस्थित मेहमानों का स्वागत करते हुए कहा कि महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, सरदार पटेल, डा॰ राजेंद्र प्रसाद, मौलाना आजाद, सरोजनी नायडू और देश के सभी भागों से आए हमारे महान नेताओं ने मिलकर हमारे इतिहास और संस्कृति के अनुरूप हमारे देश के लिए समाजवाद, धर्म निरपेक्षता और प्रजातंत्र का जो रास्ता निर्धारित किया था उसका दृढ़ता पूर्वक पालन करते हुए हमारा देश आगे बढ़ रहा है। गुट-निरपेक्ष आंदोलन के जन्मदाता हमारे प्रथम प्रधान मंत्री श्री जवाहर लाल नेहरू, श्रीमती इंदिरा गांधी और हमारे प्रतिभावान वर्तमान प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी सभी ने इन आदर्शों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए भारत की प्रगति को आगे बढ़ाया है और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भी बहुत गतिशील रहे हैं। आज सूरीनाम सहित 101 देश गुट-निरपेक्ष आंदोलन के सदस्य हैं और

यह विश्व शांति की स्थापना के लिए एक शक्ति बन चुका है। यह वर्ष पं. जवाहर लाल नेहरू का शताब्दी वर्ष भी है और दुनिया के अनेक देश किसी न किसी रूप में उस महान् नेता की स्मृति में अनेक आयोजन कर रहे हैं।

भारत के राजदूत ने कहा कि भारत प्रजातंत्र का स्वागत करने और विश्वशांति की संभावनाओं को बढ़ाने और तनावों को कम करने की दिशा में हमेशा से तत्पर रहा है। इसलिए सूरीनाम की चुनी हुई प्रजातंत्री सरकार की स्थापना के समय भारत से एक मंत्रीस्तरीय शिष्ट-मंडल और बाद में भारत के उपराष्ट्रपति स्वयं एक शिष्टमंडल के साथ सूरीनाम आए। आज की दुनिया को बेहतर बनाने के उद्देश्य से हमारे वर्तमान प्रधान मंत्री ने भी अनेक देशों की यात्रा की। उनकी हाल ही में हुई चीन और पाकिस्तान की यात्राएं यह स्पष्ट संकेत करती हैं कि हम सर्वत्र शांति और मैत्री चाहते हैं और चाहते हैं कि हर देश अपनी समृद्धि और उन्नति के लिए बिना बाहरी दबाव के काम कर सकें।

भारत के राजदूत ने कहा कि भारत और सूरीनाम के संबंध बहुत ही मित्रतापूर्ण मजबूत और पुराने हैं और भारत उन सभी क्षेत्रों में सूरीनाम के साथ सहयोग करने का इच्छुक है जिसमें उसने पिछले लगभग चालीस वर्षों में अनुभव प्राप्त किया है। अभी भी कुछ सूरीनामी छात्र भारत में अध्ययन कर रहे हैं। भारत ने तीसरी दुनिया के अनेक देशों में बहुत से संयुक्त उद्यम स्थापित किए हैं और फिलहाल ऐसे संयुक्त उद्यमों की संख्या 158 हो गई है। हमने कृषि, धातु उधोग, परिवहन, दूर-संचार, मशीन-टूल्स, व्यापारिक तथा धरेलू उपस्करों और अन्य सामान के निर्माण में बहुत प्रगति की है और कृषि क्षेत्र में हम इस शताब्दी के अंत तक 250 मिलियन टन अन्न उत्पादन का लक्ष्य लेकर चल रहे है। महामहिम ने सूरीनाम की जनता और राष्ट्रपति के सुख स्वास्थ्य और समृद्धि की कामना करते हुए कहा कि अपने अनुभव सूरीनाम के साथ बांटने में भारत को बहुत खुशी होगी।

गणतंत्र दिवस के अवसर पर आयोजित सांस्कृतिक समारोह में भी अनेक गण्यमान्य व्यक्ति तथा कला-प्रेमी जन बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित थे। भारत के राजदूत महोदय ने सूरीनाम की जनता को संबोधित करते हुए भारत की प्रजातंत्री व्यवस्था, सभी क्षेत्रों में प्रगति तथा विश्व शांति के अनवरत प्रयत्नों पर प्रकाश डाला। महामहिम ने भारत के राष्ट्रपति एवं प्रधान मंत्री का संदेश देते हुए कहा कि सूरीनाम की अधिसंख्य जनता और भारत के बीच स्थाई सांस्कृतिक और भावनात्मक संबंध हैं और भारतीय संस्कृति सूरीनामी समाज की सामासिक संरचना में महत्वपूर्ण स्थान रखती है। हम इन संबधों को और भी मजबूत तथा अर्थपूर्ण बनाने के लिए बराबर प्रयत्न करते रहेंगे।

सांस्कृतिक समारोह का श्री गणेश सूरीनाम के संस्कृति सचिव श्री अन्टोनियस ने मंगल दीप प्रज्वलित कर किया। भारतीय सांस्कृतिक केंद्र की निदेशक श्रीमती विजय नरेश ने दर्शकों का स्वागत करते हुए महात्मा गांधी का यह कथन उद्धत किया कि यह आवश्यक नहीं कि हर व्यक्ति स्वयं कलाकार हो पर कला का बोध होना बड़ी बात है। उन्होंने कहा कि सूरीनाम की जनता ने कला बोध का हमेशा परिचय दिया है और हमें उत्साहित रखा है।

राष्ट्रीय एकता पर आधारित, सांस्कृतिक केंद्र के बच्चों द्वारा प्रस्तुत आराधना समूह नृत्य से आरंभ यह सांस्कृतिक कार्यक्रम लगभग दो घंटे तक चला और अनेक सुंदर कार्यक्रम प्रदर्शित किए गए। नृत्य प्रशिक्षिका श्रीमती राखी धीर के संयोजन में ओडिसी शैली में

प्रस्तुत अजंता-एलोरा के भात्ति-चित्रों की यथार्थ अनुकृति और भावों का सूक्ष्म प्रर्दशन, दक्षिण भारत के हिंदू मंदिरों में प्रचलित मंदिर नृत्य, छोटे बच्चों की दुनिया, नृत्य और राजस्थान के लोक-जीवन की जीवंतता पर आधारित सरस लोक-नृत्य दर्शकों को अभिभूत कर गए। उन्हें आनंद मिला, उसे उन्होंने बार-बार तालियां बजाकर व्यक्त किया।

संगीत प्रशिक्षक श्री प्रेम सिंह किनोट ने अपने छात्रों द्वारा राष्ट्रीय भावना के अनुरूप एक समूह गान "आज विजयकी बेला में" और एक भक्ति रस की रचना "राम जिनका नाम है" प्रस्तुत किया। सूरीनाम के अनेक गायकों ने प्रोफेसर किनोट के निर्देशन में अपनी कला को बहुत निखारा है। दर्शकों ने इन प्रस्तुतियों को बहुत सराहा।

सितार प्रशिक्षक श्री वाच स्वाति शर्मा के संयोजन में छात्रों द्वारा एक ताल, बारह मात्रा और तीन ताल सोलह मात्रा में दो गत राग किरवानी में पेश की गई। स्वयं प्रशिक्षक श्री शर्मा ने अपनी एकल प्रस्तुति में राग मालकौस बजाया। राग की बढ़त के अलावा विभिन्न लयकारी तथा सितार व तबले पर सवाल-जवाब श्रोताओं ने बहुत पसंद किया।

सांस्कृतिक केंद्र की निदेशक श्रीमती विजय नरेश ने अतिथियों को भारतीय सांस्कृतिक केंद्र में प्रशिक्षण ले रहे छात्रों के अभिभावकों और सूरीनाम के संस्कृति-मंत्रालय को उनके सतत सहयोग के लिए धन्यवाद दिया। मंच सज्जा और प्रकाश-व्यवस्था ने संपूर्ण कार्यक्रम को सफल बनाने में बहुत योग दिया।

कार्यक्रमों की घोषणा और संचालन कु. रागिनी सिन्हा, श्रीमती कीर्ति दीक्षित और कुमारी ए. सुखई ने किया।

होली सूरीनाम की

होली-फगुआ के दिनों में यदि कोई भारतवासी सूरीनाम आए तो उसे यह देखकर सुखद आश्चर्य होगा कि कैसे हिंदुओं का यह त्यौहार सूरीनाम की सभी जातियों के लिए एक प्रमुख त्यौहार बन गया है और इसने सूरीनाम के राष्ट्रीय त्यौहार का रूप धारण कर लिया है। भारतवंशी हिंदू-मुसलमानों के अलावा सूरीनाम की प्रमुख जातियां हैं नीग्रो और इन्डोनेशियाई मूल के लोग। सूरीनाम में इन सभी जातियों के लोग मूलरूप से मजदूर के रूप में आए और प्रायः सभी ने एक साथ मेहनत की, पसीना बहाया, साथ तरह-तरह के जुल्म भी सहे। वैसे भी, गरीबों मे, मजदूरों में, स्वभाव की सरलता के कारण भाई-चारा, आपसी सद्भाव होता ही है। भेदभाव, कट्टरता तो स्वार्थी मष्तिष्क की देन है जो तरह-तरह से सीधे-सादे लोगों के सद्भाव के बीच जहर घोलने के लिए अवसर ढूंढा करते हैं लेकिन सूरीनाम इस बुराई से अभी बहुत दूर है।

सूरीनाम की सरकार ने भी होली की छुट्टियां इस प्रकार संयोजित कीं कि लोग पूरे सप्ताह भर मौज कर लें। राष्ट्रपति श्री रामसेवक शंकर पड़ोसी देश गुयाना की यात्रा पूरी कर होलिका-दहन के कुछ घंटे पूर्व ही अपने देश, अपने लोगों के बीच लौट आए। राष्ट्र के नाम अपने संदेश में राष्ट्रपति ने कहा कि होली-फगुआ का यह पर्व विभिन्न जातियों के बीच

विकसित एकता और सद्भाव का एक उदाहरण है। इस दिन से हमारा नया वर्ष शुरू होता है। जिस प्रकार अपने व्यक्तिगत जीवन में हमलोग सारा वैमनस्य, सारा अलगाव भूलकर इस त्यौहार को मिलकर मनाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र की उन्नति और विकास के लिए भी फगुआ से शुरू होनेवाले इस नए वर्ष में व्यक्ति, दल या संगठन के स्तर से ऊपर उठकर एक साथ मिलकर काम करें।

भारत-सूरीनाम मैत्री का एक प्रमुख आधार मुख्य रूप से सांस्कृतिक रहा है। विगत 6 वर्षों से सूरीनाम में भारत के राजदूत पद पर कार्यरत महामहिम श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने हर तीज-त्यौहार पर सुदंर सांस्कृतिक आयोजन करके और सूरिनामियों द्वारा आयोजित उत्सवों में शामिल होकर हमेशा उनका उत्साह बढ़ाया है - चाहे दीवाली हो या होली, रक्षाबंधन, शिवरात्रि या दुर्गा पूजा। होली-फगुआ का आयोजन तो त्यौहार से काफी पहले शुरू हो जाता है। विभिन्न संस्थाएं, मंदिर समितियां, चौताल और फगुआ गाने वाली विभिन्न मंडलियां जगह-जगह गाँव-गाँव में और मदिंरों में आयोजन करती हैं और चौताल फगुआ गायन के अलावा भी तरह-तरह के दूसरे कार्यक्रम रखे जाते हैं, धार्मिक-नाटक, प्रहसन, होली की मस्ती से भरी कविताएं। कोई भी इनमें भाग ले सकता है, प्रोत्साहन के लिए विभिन्न प्रकार के पुरस्कार भी रखे जाते हैं।

मुख्य त्यौहार के दिन उल्लास अपने चरम पर होता है। वृक्षों की बहुलता वाले इस देश में विभिन्न स्थानों पर होलिका दहन काष्ठ से संपन्न होता है।

मंदिरों, गाँवों के अलावा सभी राजनीतिक पार्टियाँ अपने-अपने मुख्य कार्यालयों के प्रांगण में बड़े पैमाने पर फगुआ मनाती हैं। हजारों समर्थक और कार्याकर्ता जुटते हैं, रंग, अबीर-गुलाल लगाते हैं या टेल्कम पाउडर और परफ्यूम एक दूसरे पर स्प्रे करते हैं। चौताल-पार्टियां स्थान-स्थान पर चौताल और फगुआ गाती हैं। खान-पान की सर्वत्र भरपूर और मुक्त व्यवस्था रहती है। उल्लास और मस्ती में छोटे-बड़े, पुरुष-स्त्रियां सभी थिरकने लगते हैं। जन-जन मस्ती के आलम में खो जाता है। शायद फगुआ के इसी आकर्षण ने जातीय भेदभाव मिटाकर इसे सबका त्यौहार बना दिया है।

भारतीय राजदूत का आवास होली के दिन सभी के लिए आकर्षण का केंद्र रहता है। सुबह से ही लोगों का आना आरंभ हो जाता है। इस बार भी अनेक चौताल-फगुआ गायकों के दल आए, बारी-बारी से गाते-बजाते, अबीर-गुलाल मलते भारतीय भोजन का आनंद लेते और अपनी शुभकामनाएं देते हुए आगे बढ़ते थे। सार्वजनिक निर्माण विभाग के मंत्री इंजीनियर डाक्टर हरनारायण जानकी प्रसाद सिंह स्वयं भी बड़े तन्मय होकर राजदूत के घर चौताल गा रहे थे और इसी गायक समूह में मंत्री जी के पिता श्री भी सम्मिलित थे। भारत के राजदूत महामहिम श्री बच्चू प्रसाद सिंह ने सभी अभ्यागतों का भावपूर्ण स्वागत करते हुए कहा कि सूरीनाम के लोगों ने मुझे अपने कार्यकाल के दौरान इतना स्नेह और आदर दिया है कि वह अतुलनीय और मेरे लिए बहुमूल्य थाती है। यह आपके भारत व भारतीय संस्कृति के प्रति आदर, प्रेम और निष्ठा का प्रतीक है।

अबीर-गुलाल और रंगों से सराबोर राष्ट्रपति श्री रामसेवक शंकर, नीग्रो समुदाय के नेता और उपराष्ट्रपति श्री हेंक आरोन, असेम्बली अध्यक्ष श्री जगर नाथ लक्षमन, जवानीज समुदाय के नेता श्री विली सुमिता के माथे पर जब भारत के राजदूत ने गुलाल लगाया और गले

मिले तो सूरीनाम-दूरदर्शन ने उन क्षणों को अपने कैमरे में कैद करने में देर नहीं की और राजधानी में होली-उत्सव के प्रसारण में इसे ही मुख्य दृश्य के रूप में प्रस्तुत करते रहे। सनातन धर्म के श्रीकृष्ण मंदिर से अपने रेडियो प्रसारण में भारत के राजदूत ने समस्त सूरीनामी जनता को होली का शुभ संदेश देते हुए देश की समृद्धि की कामना की।

नेशनल डेमोक्रेटिक पार्टी ने भी अपने पार्टी स्तर पर होली मनाई जिसमें कमाण्डर देसी बौतर्स और भूतपूर्व प्रधान मंत्री वेइदन बोश सहित सभी नेता मौजूद थे। कमाण्डर बौतर्स ने भारत के राजदूत को होली की शुभकामनाएं दीं।

भारत से इतनी दूर भारतीय परंपराओं की इतनी सशक्त अभिव्यक्ति और मान्यता गौरव की बात है।

□

प्रस्तुति – रागिनी सिन्हा

अनुवाद के लिए सम्मान

डॉ॰ रणजीत साहा

भारतीय अनुवाद परिषद का वर्ष 1989 का द्विवागीश एवं नातालि सम्मान-अर्पण समारोह नई दिल्ली में उप-राष्ट्रपति निवास में 4 मार्च 1989 को संपन्न हुआ। महामहिम उप-राष्ट्रपति डॉ॰ शंकर दयाल शर्मा ने इस वर्ष के द्विवागीश पुरस्कार हिंदी के सुप्रतिष्ठित साहित्यकार एवं अनुवादक श्री अमृत राय एवं गुजराती की लेखिका एवं भारतीय भाषा की अनुवादिका श्रीमती सरला जगमोहन एवं नातालि पुरस्कार डॉ॰ मुजीबुल इस्लाम को अर्पित किये। माननीय डॉ॰ शर्मा ने इस अवसर पर अनुवाद को राष्ट्रीय एकता का सशक्त माध्यम बताते हुए कहा कि भारतीय संविधान की अष्टम सूची की सभी भाषाएँ देश की राष्ट्रीय भाषाएँ हैं और लगभग सभी भाषाओं का साहित्य अत्यंत समृद्ध है। विशेष रूप से तमिल का साहित्य तो बहुत ही पुराना एवं समृद्ध है। राष्ट्रीय एकता के सूत्र को मजबूत करने के लिए यह जरूरी है कि इन भाषाओं के साहित्य का परस्पर अनुवाद हो, क्योंकि अनुवाद से अलगाव दूर हो जाता है और परस्पर स्नेह एवं सामीप्य बढ़ता है। वाल्मीकि रामायण के ओड़िया अनुवाद, मराठी की "ज्ञानेश्वरी" के डॉ॰ जमवार दंपत्ती द्वारा अंग्रेजी, संस्कृत और हिंदी में दोहा अनुवादों पर अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि सब साहित्य एक समान होता है। तिरुवल्लुवर, जिसे तमिल भाषी पाँचवाँ वेद मानते हैं, पढ़ने से पता चलता है कि जो हमारे उत्तर में कहा गया है वही वस्तुतः दक्षिणवाले भी कहते हैं। हर भाषा के लिए अनुवाद की आवश्यकता पर जोर देते हुए उन्होंने बताया कि तेलुगु साहित्य का शुरू अनुवाद से प्रारंभ हुआ। महाभारत, रामायण और भर्तृहरि शतक से प्रभावित कितना ही साहित्य लिखा गया। अनुवाद के अभाव में विश्व की महान साहित्यिक कृतियों का भला कैसे रसास्वादन किया जा सकता है। उन्होंने बचपन में शेक्सपीयर की नाट्य कृतियों का आगा हश्र कश्मीरी के "खूने नाहक" जैसे अनुवादों के माध्यम से जाना था। दक्षिण के आलवार कवियों की भक्ति की कृतियों को भी उन्होंने अनुवाद के माध्यम से पढ़ा और जाना कि बल्लभाचार्य के माध्यम से इनका सूर की भक्ति से कितना संबंध है। भक्ति तो उपजी ही दक्षिण से है। हाल में इलाहाबाद के सर गंगानाथ संस्कृत विद्यापीठ से प्रकाशित संस्कृत-पंजाबी कोष का विशेष उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि इसमें आज की देहाती पंजाबी के सोलह हजार से अधिक वाक्यांश ऐसे हैं जो वैदिक संस्कृत के हैं। अनुवाद की भाषा न तो अधिक संस्कृतनिष्ठ हो और न ही फारसी बोझिल अपितु हमें अपनी बोलियों या जनपदीय भाषाओं पर विशेष ध्यान देना चहिए। भाषा "पनघट" की अर्थात् जन भाषा होनी चहिए, ताकि आम आदमी तक हम अपनी बात पहुँचा सकें-जनता की भाषा ही जिंदा रहती है और उसी का विकास होता है। अनुवाद कार्य से न केवल देश की भाषाओं का विकास होगा बल्कि यह पूरे देश को भी जोड़ेगा।

उप-राष्ट्रपति जी ने भारतीय अनुवाद परिषद द्वारा इस अवसर पर विशेष रूप से प्रकाशित स्मारिका और परिषद के नवीनतम अंग्रेजी प्रकाशन श्री रघुनाथ राव लिखित "आर्ट ऑफ दि ट्रांसलेशन" का विमोचन किया।

सुप्रतिष्ठित हिंदी समालोचक डॉ. नगेंद्र ने अपना उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा कि इटली के दार्शनिक बेनेदित्ते क्रोचे का मत था कि अनुवाद एक दूसरी ही रचना होती है। विश्व के साहित्य-प्रेमी जानते हैं कि उमर खय्याम की रूबाइयों का फिट्जराल्ड ने जो अनुवाद किया, वह मूल से काफी भिन्न और एक नई रचना थी। राजा लक्ष्मण सिंह ने कालिदास की अमर कृति "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" का सरल अनुवाद किया और संस्कृत न जानने वाले प्रायः सभी पाठक अनुवाद के माध्यम से ही इस कृति तक पहुँचे हैं। किंतु यदि दोनों की तुलना की जाये तो मूल और अनुवाद का अंतर स्पष्ट हो जाता है। कालिदास जहाँ कला और सौंदर्य अमृत पुत्र थे वहां लक्ष्मण सिंह की प्रतिभा और दृष्टि वस्तुतः रीतिकालीन थी। अतः मूल की शैली भी उदात्तता, औज्वल्य एवं गरिमा का अंतरण अनुवाद में नहीं हो पाया है। इन सीमाओं के होते हुए भी अनुवाद कार्य एक आवश्यक सारस्वत-कार्य है, उसके बिना साहित्य कितना दरिद्र होता। इस संक्रांति काल में अनुवाद का तो और भी महत्व है क्योंकि यह राष्ट्रीय एकता का एक अनिवार्य सेतु है।

प्रसिद्ध न्यायविद और साहित्य प्रेमी डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी ने अनुवाद को रास्ते और मंजिल के समीकरण से जोड़कर अनुवादक की रचनात्मक भूमिका को रेखांकित करते हुए कहा कि यद्यपि अनुवाद की यात्रा लंबी और कष्टसाध्य होती है लेकिन मंजिल मनोरम होती है। अनुवाद की पूर्णता रास्ते और मंजिल की एकता का प्रतीक है। हालाँकि अनुवाद और अनुवादक के बारे में भ्रांतिपूर्ण धारणाएँ रही हैं। अनुवादक तो वस्तुतः अनुसर्जक होता है, कृति का व्याख्याता होता है। वह मूल कृति में प्राण-प्रतिष्ठा करता है। हममें से किसी ने ईश्वर को नहीं देखा, उसकी प्रतिमा को बार-बार देखते हैं। अनुवादक भी एक प्रतिमाकार है जो अनूदित कृति में प्राण-प्रतिष्ठा करता है। इसलिए वह प्रशंसा का पात्र ही नहीं, प्रणम्य है। विष्णु की अभ्यर्थना नारद की वीणा से ही हो सकती है – उससे रहित होकर नहीं हो सकती है। आज के युग में संवाद की सार्थकता सर्वविदित है और अनुवाद संवाद का सबसे सशक्त माध्यम और संसाधन है। "मक्षिका स्थाने मक्षिका" तो अनुवाद का मज़ाक है। अनुसृजन ही उसे सम्मान दिलाता है। हमारी सांस्कृतिक विरासत में अनुवाद और व्याख्या की लंबी परंपरा है। अनुवाद केवल पुस्तक का ही नहीं होता अपितु कला-कृतियों का भी होता है। मथुरा का संपूर्ण संग्रहालय उसी व्याख्या से भरा पड़ा है। कनिष्क से पूर्व हिंदुस्तान और ग्रीस के बीच संवाद अनुवाद से ही संभव हो सका था। डॉ. राधाकृष्णन ने कहा था कि भारतीय साहित्य का मूल स्वर एक है जो कई विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखा जाता है। समग्र विश्व का साहित्य जो भिन्न-भिन्न भाषाओं में विरचित होता है, अनुवाद न होता तो संवाद की सारी संभावनाएँ विनष्ट हो जातीं। बात एक बिंदु पर अवरूद्ध हो जाती। अनुवाद जो साहित्य की महान् विधा है उसके वरदान से मानव वंचित ही रह जाता है। मानवीय अस्मिता खंडित ही रहती। जब तक रवींद्रनाथ, शरतचंद्र या शेक्सपीयर को न पढ़ा जाये, जब तक मानव-जिज्ञासा कैसे शांत होगी ? भारतीय एकता अपितु विश्व एकता का सूत्र अनुवाद है इसीलिए अभिनंदनीय है। भारतीय अनुवाद परिषद के प्रयास सराहनीय हैं कि इसके प्रयासों से

अनुवाद-कार्य को एक नयी दिशा मिलेगी । साहित्य और समाज को अनुवाद की महत्ता को स्वीकार करना चाहिए । वर्तमान विदेश मंत्री श्री नरसिंहराव जी ने भी अनेक अच्छे अनुवाद किये हैं । डॉ. सिंधवी ने बताया कि उन्होंने साहित्य-चर्चा की शुरूआत अनुवाद से की थी, और अनुवाद में साहित्य की सार्थकता पायी । अनुसर्जक वास्तव में द्विज होता है जो मूल कृति में प्रवेश कर दूसरी कृति को जन्म देता है । वह संस्कृतियों, साहित्य एवं विषय के बीच एक सेतु होता है ।

आज जापान आदि देशों में अनुवाद कार्य के लिए जेबी कंप्यूटर निर्मित हो गये हैं उनमें कई भाषाओं के कार्ड डाल दीजिये और अनुवाद प्राप्त कर लीजिये । पर यह सब हमें कहाँ कहाँ ले जायेगा, मालूम नहीं । फिर भी अनुवादक के व्यक्तिगत योगदान को मानना होगा । उसके व्यक्तित्व, कलात्मक कृतित्व एवं सांस्कृतिक समझ का कोई विकल्प नहीं हो सकता । अनुवादक सांस्कृतिक संबंधों का रिजर्व बैंक है, उसे समाज में मान्यता दी जानी चाहिए ।

इस अवसर पर द्विवागीश पुरस्कार से सम्मानित हिंदी के वरिष्ट साहित्यकार श्री अमृत राय जिन्होंने "फाँसी के तख्ते से", "आदिविद्रोही", "समरगाथा", "अग्निदीक्षा", "शहीदनामा" और "हैमलेट" आदि कृतियों के माध्यम से अनुवाद-क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किये हैं, अनुवाद की प्रक्रिया पर प्रकाश डाला । उन्होंने बताया कि आजीविका की किसी बाध्यता के बिना ही उन्होंने श्रेष्ट कृतियों के सरोकार को अपने पाठकों के साथ बाँटने के लिए अनुवाद किए हैं । मूल कृति के आशय को अपने भीतर समाकर उसको पुनः अपनी भाषा में पेश करना बड़ा कठिन होता है लेकिन यह होता है बड़ा दिलचस्प । श्रम साध्य होते हुए भी अनुवाद कार्य अपने आप में पुरस्कार भी है । अनुवाद के लिए शब्द और अर्थ की तहों के भीतर बैठना और उनकी ध्वनियों और धमनियों को टोहना-टटोलना होता है । तमाम बातों को समझना-समझाना होता है । शब्द अपने साथ एक संपूर्ण संसार और संस्कृति लेकर आते हैं । अनुवाद के माध्यम से दूसरी भाषा में उनकी समस्त शक्ति का अंतरण वस्तुतः एक सर्जनात्मक-प्रक्रिया है । इसके लिए अनुवाद की भाषा को भी सशक्त और समर्थ होना चाहिए । इस दृष्टि से हिंदी एक सशक्त भाषा है । लेकिन हिंदी को आम लोगों की जुबान से काट कर कुछ लोग इसे असमर्थ भाषा बनाने पर तुले हुए हैं । परिनिष्ठित हिंदी और संस्कृत बहुल शब्दावली के सहारे जो भाषा विकसित की जा रही है वह किताबी या शास्त्रीय बनकर रह गयी है । इसी तरह उर्दू भी अरबी और फारसी स्रोतों से शब्दों को लेती जा रही है । इसका परिणाम यह हुआ है कि हिंदी और उर्दू जो एक दूसरे के कभी बहुत निकट थी इन बाहरी तकाजों के चलते जनता की भाषा से दूर होती जा रही है । यह एक परेशान करनेवाली समस्या है ।

अनुवाद-सिद्धांत पर लिखी गयी पुस्तक "दारूत्तर्जुमा उस्मानिया की इल्मी और अदबी खिदमात" पर नातालि पुरस्कार से सम्मानित डॉ. मुजीबुल इस्लाम ने इस बुनियादी बात पर जोर दिया कि हिंदी और उर्दू सगी बहनें हैं और उनमें सगी बहिनों जैसा ही बर्ताव होना चाहिए । यदि अनुवादक इनको अलग कर रखेंगे तो लेखक शायर और विद्वान आम लोगों से दूर होते चले जायेंगे।

द्विवागीश पुरस्कार से सम्मानित श्रीमती सरला जगमोहन ने कहा कि अनुवाद कर्म कठिन होते हुए भी उन्होंने इसे स्वेच्छा से अपनाया है । इसके लिए उनके मन में कोई भी हीन

भावना नहीं है और समाज तथा संस्थाओं में अनुवाद कार्य की स्वीकार्यता और प्रतिष्ठा पहले से कहीं ज्यादा बढ़ी है। यही कारण कि विश्व और भारत की श्रेष्ठ और चर्चित कृतियों के अनुवाद अब तेजी से कराये जाने लगे हैं और इनकी माँग भी बढ़ी है।

भारतीय अनुवाद परिषद के अध्यक्ष डॉ. श्याम सिंह "शशि" ने परिषद के पिछले पचीस वर्ष के इतिहास का उल्लेख करते हुए, उसकी उपलब्धियों और भावी योजनाओं पर प्रकाश डाला। परिषद की सचिव डॉ. गार्गी गुप्त ने पुरस्कारों तथा सम्मानित साहित्यकारों का परिचय दिया। समारोह का संचालन डॉ. रणजीत साहा ने किया। परिषद के उपाध्याक्ष डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने सम्मानित साहित्यकारों, उप-राष्ट्रपति महोदय, विशिष्ट अतिथियों, उपस्थित विद्वतजनों और परिषद के सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त किया। □

बारहवाँ अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन

डॉ॰ अमरेंद्र मिश्र

राजधानी के विट्ठलभाई पटेल भवन में प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष भी मार्च महीने की 10 और 11 तारीख को अखिल भारतीय नागरी लिपि का दो दिवसीय वार्षिक सम्मेलन हुआ। इसका उद्घाटन सुप्रसिद्ध साहित्यकार श्री क्षेमचंद्र सुमन ने किया। अपना विशिष्ट वक्तव्य देते हुए सुश्री निर्मला देशपाण्डे ने कहा कि "मुझे अंग्रेजी का साम्राज्यवाद पसंद नहीं है। नागरी की प्रगति के लिए अंग्रेजी के बढ़ते साम्राज्यवाद से हमें मुकाबला करना होगा। नागरी लिपि को रोमन ने विकृत किया है। "राम" का उच्चारण "रामा" और "कृष्ण" का उच्चारण "कृष्णा", "योग" का "योगा" आज आम बात है। पतंजलि ने हमें "योग" शब्द दिया है "योगा" नहीं। इसलिए अंग्रेजी के बढ़ते प्रसार का रोका जाना जरूरी है। सुश्री निर्मला देशपाण्डे ने इसके लिए सभी भारतीयों को जिम्मेवार बताया और कहा कि हमारे देश में अंग्रेजी की हुकूमत इसलिए चल रही है क्योंकि इसे हम चलने दे रहे हैं। पर नागरी की सक्षमता से हम सब परिचित हैं। यह एक सक्षम लिपि है और चीनी, जापानी जैसी भाषायें इसी श्रेणी में आती हैं।

सुश्री देशपाण्डे ने नागरी के सरल, सुगम और हृदय ग्राह्य होने का एक सबूत दिया कि किस प्रकार उन्होंने अरबी भाषा में लिखित कुरान का अध्ययन किया। एक मौलवी साहब की बोली हुई बात को वह नागरी में लिखती जाती थीं और इस प्रकार सुगमतापूर्वक इसको समझ सकीं। यह सिर्फ लिपि का चमत्कार ही है। विनोबा ने कहा कि पूरी दुनिया को जोड़ने का काम नागरी कर सकती है। सुश्री देशपाण्डे का यह स्पष्ट मत था कि नागरी को अपनाए बिना सरकार की विदेश नीति, शांति और तटस्थता का कोई महत्व नहीं रह जाता। उन्होंने कहा कि हमारे प्रधानमंत्री हाल ही में जब चीन की यात्रा पर गए तो वहाँ जो दुभाषिया था वह चीनी था। इसका अर्थ यह हुआ कि उन देशों को अपनी लिपि और भाषा से कितना अधिक प्रेम है पर हमारे यहाँ लोग अंग्रेजी से काम चला लेते हैं।

सम्मेलन के उद्घाटन समारोह में गांधी जी की पौत्री श्रीमती तारा भट्टाचार्य ने विद्यालयों में निबन्ध प्रतियोगिता में उत्तीर्ण विद्यार्थियों को पुरस्कार वितरण किया।

समारोह के प्रथम सत्र का विषय था - "भावात्मक एकता को सुदृढ़ करने में नागरी का योगदान"। इसकी अध्यक्षता सांसद श्री पी॰ के॰ थुंगन ने की। श्री थुंगन ने कहा कि हिंदी भाषा और साहित्य से गहरे रूप से जुड़े न रहने के बावजूद नागरी से उनका लगाव है। उन्होंने कहा कि लिपि जो कोई भी हो वह सुगम और सरल होनी चाहिए और इस दृष्टि से नागरी उपयुक्त लिपि है। थुंगन ने बताया कि स्वतंत्रता के बाद नागरी के विकास में जो पहल हुई वह अपेक्षाकृत कम है और इस क्षेत्र में अधिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

प्रो॰ विजयेंद्र स्नातक ने कहा कि भारत की सभी भाषाओं को एकसूत्रता में पिरोने का काम नागरी लिपि ही कर सकती है। दक्षिण की भाषाओं का अनुवाद नागरी लिपि के माध्यम से पहले पहल हिंदी में ही हुआ था।

यशपाल जैन ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि आजादी के बाद भी हमारे देश में अंग्रेजी का वर्चस्व है। हमारी दृष्टि राजनैतिक हो गयी है और भाषा तथा लिपि का मामला राजनीति में उलझकर रह गया है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि राजनैतिक रूप से हम चाहे जो भी हैं, हमारी संस्कृति सनातन है। नागरी लिपि ही संपर्क लिपि या जोड़-लिपि का काम कर सकती है।

चर्चा में हिस्सा लेते हुए डॉ. भीमसेन निर्मल ने कहा कि सन् 1950 में ही हमने हिंदी और नागरी को भुला दिया और उसी का परिणाम है कि आज हमारे समक्ष लिपि का प्रश्न संघर्ष की स्थिति से गुजर रहा है। हिंदी ने नागरी को और उर्दू ने फारसी को अपनाया है। दक्षिण भारत की भाषायें भी यही कर रही हैं। किसी जमाने में, दक्षिण भारत में ताड़ के पत्तों पर और उत्तर भारत में भोज पत्र पर लिखा जाता था और उस वक्त तेलुगु जैसी भाषा का विकास नागरी द्वारा ही हुआ। राजनैतिक धरातल पर हमारे विचार भिन्न हो सकते हैं पर साहित्य सबको जोड़ता है। अब तेलुगु भाषा में "रामचरितमानस" के बीस अनुवाद आए। तेलुगु की रामायण को नागरी में पढ़ें तो सुविधा होगी।

श्री रमाप्रसन्न नायक ने नागरी के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता पर बल दिया। पहली बात यह कि संस्कृत भाषा में अगर पुस्तकें उपलब्ध कराकर पाठकों के बीच वितरित की जायें तो संभवतः अधिकांश लोग समझ नही पायेंगे। इसलिए हमारे देश में एक लिपि ऐसी हो जिसे सब आसानी से समझ सकें और वह नागरी ही हो सकती है। उन्होंने बताया कि विभिन्न प्रदेशों में उनकी अपनी लिपि में दुकानों के नाम वगैरह पढ़ने में हमें असुविधा होती है पर वे नाम अगर नागरी में हों तो यह असुविधा दूर हो सकती है। केंद्रीय हिंदी निदेशालय ने नागरी के प्रगामी प्रयोग पर जोर दिया है और विभिन्न भाषाओं में लिखे साहित्य को नागरी के माध्यम से और अधिक उजागर किया है। हिंदुस्तान में हिंदी संपर्क भाषा के रूप में और नागरी संपर्क-लिपि के रूप में व्यवहृत हो-यह मांग हिंदीतर प्रदेशों से भी आनी चाहिए - चौदह भाषाओं के लिए एक लिपि का होना आवश्यक है - व्यवहार की दृष्टि से भी नागरी लिपि अत्यंत महत्वपूर्ण है। श्री नायक ने प्रो. विजयेंद्र स्नातक के इस वक्तव्य को उद्धृत किया कि लिपियों की वजह से उच्चारण में अधिक फर्क आता है जैसे बम्बई के एक थियेटर में "कण-कण में भगवान" को लोगों ने "कान-कान में भगवान" पड़ा। इसी प्रकार "केरल" को "केरला" और "कर्नाटक" को "कर्नाटका" कहकर लिपि के साथ अन्याय किया गया है।

अलीगढ़ विश्वविद्यालय से आए प्रो. नजीर मोहम्मद ने अपने विचार प्रकट करते बताया कि अन्नामलाई विश्वविद्यालय के सामने मालवीय जी की प्रतिमा लगी है - वर्ष 1967/68 में वहाँ केवल तमिल का प्रयोग होता था - शहर में कोई बोर्ड ऐसा नहीं मिला जिसमें हिंदी या अंग्रेजी में लिखा कुछ मिले पर अभी-अभी वहाँ जाने का अवसर मिला तो कुछ बदलाव मिला। यानी देवनागरी का प्रयोग देखने को मिलता है अब।

प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. परमानंद पांचाल ने अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि नागरी का प्रचलन भारत में, आज के समय में एक चुनौतीपूर्ण काम है। राजभाषा के रूप में स्वीकृत खड़ी बोली का असली रूप दक्खिन में है। अभी जो पंद्रह भाषायें हैं (अंग्रेजी नहीं) वे सभी भाषायें पल्लवित-पुष्पित होती रहें इस दृष्टि से नागरी की उपयोगिता कहीं बढ जाती है। उन्होंने

सुझाव दिया कि नागरी के संदर्भ में आदिवासियों की बोलियों की तरफ भी रूझान का होना आवश्यक है।

द्वितीय विचार गोष्ठी का शीर्षक था **"राष्ट्रीय अस्मिता और संपर्क लिपि नागरी"** :- चर्चा में हिस्सा लेते हुए और विषय प्रवर्तन करते हुए प्रख्यात कथाकार-आलोचक डॉ· गंगाप्रसाद विमल ने कहा कि हमारे सामने राष्ट्रीय अस्मिता आज बड़ी समस्या है। अपने देश के ऐतिहासिक परिदृश्य को देखें तो पता चलता है कि स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद का इतिहास क्रमशः घटनाओं के करवट बदलने का इतिहास है। स्वतंत्रता के बाद छोटे-छोटे आंदोलन होते हैं और इस प्रकार भारत हाशिये पर आ जाता है। और क्षेत्रीयता प्रमुख हो जाती है। परंतु किन्हीं दूसरे क्षेत्रों की ओर देखें तो यह नहीं लगेगा। जापान, चीन, कोरिया और योरोप के छोटे-छोटे देशों को देखने से यह आभास होता है कि राष्ट्रीय संकल्पना के लिए इन देशों ने छोटी-छोटी चीजों को, स्वार्थ-परकता को परे किया है। पर हमारे यहाँ हाल के वर्षो में क्षेत्रीयता पनपी है और राष्ट्रीयता गुम होती जा रही है। भाषा के साथ भी एक हद तक यही हुआ। हमारे यहाँ द्रविड़ की जो लिपि है और आर्य भाषाओं की जो लिपि है, उनमें चित्रांकन का भेद है। जो लिपि जितनी अधिक ध्वनियों को स्वयं में समाहित कर सकती हो वह उतनी ही अधिक समर्थ हो सकती है। पूरे देश को अगर अपने संस्कार और अपनी संस्कृति से परिचित कराना हो तो वह नागरी लिपि से ही संभव हो सकेगा। हमारी अधिकांश भाषायें जिस ध्वन्यात्मक आधार पर खड़ी हैं, वह शायद हिंदी ही हो सकती है। राष्ट्रीय अस्मिता नाम की कोई "चीज" है तो वह नागरी के बिना पूरी नहीं हो सकती। डॉ· विमल ने जोर देकर कहा कि भाषाओं के मामले में तो समझौते हो सकते हैं, पर लिपि के मामले में यह नहीं हो सकता। उन्होंने सिर्फ तीन दिन में नागरी लिपि के द्वारा अपने एक अमरीकी मित्र के कबीर को पढ़ने का उदाहरण सामने रखा। उन्होंने बताया कि पोलैण्ड, चेकोस्लोवाकिया जैसे देश का काम एक लिपि के आधार पर चल जाता है।

इस वर्ष के इस दो दिवसीय सम्मेलन में एक प्रमुख घटना के रूप में हमारे पडोसी देश नेपाल से आए प्रतिनिधिमण्डल का उल्लेख करना जरूरी है जिसकी उपस्थिति से नागरी को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिल सकी और अखिल भारतीय नागरी लिपि सम्मेलन का स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय-सा लगा और इसे सबने महसूस किया। नेपाल प्रतिनिधिमंडल के एक वरिष्ठ सदस्य श्री सूर्यबहादुर श्रेष्ठ ने अपने विचार प्रकट करते बताया कि आपका प्रयास नागरी के प्रयोग के विषय में अभी चल रहा है पर हमारे यहां इसका समाधान दो सौ वर्ष पूर्व ही हो चुका है। नेपाल पहला राष्ट्र है जिसने इसे अपना लिया है। दो सौ वर्ष पूर्व जब नेपाली शासन की स्थापना हुई तब नेवारी भाषा ने राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देवनागरी को अपनाया। उन्होंने खेद प्रकट किया कि नेपाल से इस विषय में किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं लिया गया। श्री श्रेष्ठ ने बताया कि राजनैतिक रूप से विचार-धाराओं में फर्क आ सकता है पर भावात्मक रूप से हम एक लिपि के द्वारा एक हो सकते हैं। नागरी की प्रामाणिकता के विषय में श्री श्रेष्ठ ने बताया कि नेपाल के भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री आचार्य जी से नागरी लिपि के संशोधन के विषय में पूछा तो उन्होंने यह जवाब दिया कि हमारा दुर्भाग्य है कि चीन यह लिपि अपनाते-अपनाते भूल गया। भारत और चीन के बीच, हो सकता है, इस लिपि के कारण और निकटता आती। दुनिया की

सभी लिपियों की तुलना में नागरी अधिक ध्वन्यात्मक है। इसमें समानांतर रूप से अक्षर चलते रहे हैं। अब इसका जो परिवर्धित रूप स्वीकार किया गया है उसमें मराठी शब्दों का भी समावेश किया है पर इसमें जो दूसरी अन्यान्य कमियां हैं उनकी तरफ भी ध्यान देने की आवश्यकता है। रोमन की तुलना में नागरी अधिक ध्वन्यात्मक है।

10 मार्च की शाम केंद्रीय रक्षा मंत्री श्री कृष्णचंद्र पंत ने सम्मेलन में पधार कर इसकी गरिमा को और अधिक बढ़ाया। मंत्री महोदय ने अपने उद्गार प्रकट करते हुए बताया कि किसी भाषा के विकास में लिपि का क्या महत्व है यह बताने की आवश्यकता नहीं और हमारे देश में भाषा को लेकर जो परिस्थिति है वह कही नही है। अमेरिका में अंग्रेजी, रूस में रूसी और अन्यान्य ऐसी भाषायें है जो अपने-अपने सीमित दायरे में पढ़ाई जाती है पर रूसी सबको सीखनी पड़ती है। यूरोप के कई देशों की अपनी-अपनी भाषायें है। चीन में एक ही भाषा है - बोलने का तरीका भले ही भिन्न हो। पर जितनी भाषायें हिंदुस्तान में हैं उतनी कही नहीं है। इन भाषाओं का अपना इतिहास और अपना साहित्य है। हिंदुस्तान के सभी लोग चाहते है कि ये भाषायें फलें-फूलें परंतु देश एकता की मांग करता है और एकता तभी होगी जब एक भाषा और एक लिपि हो। इसे सब स्वीकार करें और आपसी सौहार्द से, प्रेम से अपनायें तभी यह लक्ष्य सफल होगा। देश की एकता का आधार भाषा बन सकती है। यह प्रसन्नता की बात है कि हिंदी ने संपर्क भाषा का रूप लिया है - हिंदी और अन्य दूसरी भाषाओं के बीच कोई दूरी नहीं है। लिपि स्वयं में इतनी अधिक शक्तिशाली और प्रभावी होती है कि कई लोग जो उर्दू नही जानते पर शेरो-शायरी उर्दू में करते हैं। क्योंकि देवनागरी में ऐसी किताबें निकली हैं। श्री पंत ने बताया कि नागरी लिपि सामान्य जन तक पहुंचे तो व्यय भी कम होगा और यह इतनी सुगम है कि जितनी लिखने में सरल है उतनी ही पढ़ने में भी है। दूसरे दिन यानी 11 मार्च की सुबह "नागरी के प्रगामी प्रयोग में यांत्रिक उपकरण" विषय पर गोष्ठी की शुरूआत की, अध्यक्षता डॉ· लोकेशचंद्र ने की। उन्होंने अपने विचार प्रकट करते हुए बताया कि नागरी के प्रगामी प्रयोग में यांत्रिक उपकरण के संबंध में हिंदी की यंत्रणा की बात पर हमारा ध्यान अकसर चला जाता है क्योंकि हिंदी के प्रयोग में ही हमारे यहाँ घोर उदासीनता बरती जाती है। उन्होंने भारतीय लोक सेवा संघ कार्यालय के बाहर हिंदी को उचित स्थान दिलाने हेतु सत्याग्रहियों की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि यह खेदजनक है कि हम उनके लिए या हिंदी की न्यायोचित माग के मसले पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। हमारे देश में यूरोपीयकरण का संघर्ष चल रहा है। उन्होंने बताया कि नागरी के यंत्रीकरण में कोई कठिनाई नहीं है। एक डिस्क में चार लाख चिह्न नागरी के आ सकते हैं पर वित्तीय असुविधा की वजह से यह संपन्न नही हो पा रहा है। श्री के· सी· पंत ने सम्मेलन में स्मारिका का विमोचन किया और विश्वविद्यालयों में किया गया निबंध प्रतियोगिता का पुरस्कार भी वितरित किया।

डॉ· धनानंद घाटे (पुणे) ने अपने विचार प्रकट करते हुए इस बात पर जोर दिया कि नागरी के अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप पर हमें बल देना चाहिए क्योंकि यह लिपि नेपाल तक में प्रचलित है। नागरी को लेकर लोगों में गलतफहमी पैदा हो जाती है क्योंकि चर्चा के क्रम में लोग हिंदी पर बात करने लग जाते हैं। यह दूर होनी चाहिए। पर अंग्रेजी के बढ़ते प्रयोग पर उन्होंने चिंता व्यक्त की और कहा कि स्वतंत्रता पूर्व हमारे देश में अंग्रेजी का प्रचलन उतनाधिक नहीं था जितना कि आज है। भारत में अधिकांश नामपट्ट वगैरह अंग्रेजी भाषा में ही देखने को मिलते

हैं। उन्होंने यह याद दिलाया कि सन् 1905 ई. में लोकमान्य तिलक ने भारत में नागरी का प्रचार किया और जस्टिस श्री शारदाचरण जी, जो बंगभाषी थे, ने भी इसकी वकालत की। विनोबा के गीता प्रवचन अन्य भाषाओं में भी अनूदित हैं और उनकी लिपि नागरी है।

सुपरिचित साहित्यकार और पूर्व सांसद श्री शंकरदयालसिंह ने चर्चा में भाग लेते हुए बताया कि बिनोवा जी ने पहली सभा, नागरी के संबंध में पवनार में बुलाई तभी से हम नागरी से जुड़े है। उन्होंने सरकार की त्रिभाषा नीति को लागू करने पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि "स्वागत" और "अभिनंदन" जैसे नाम रोमन लिपि में होते है। अपनी संस्कृति का प्रचार इतने विरूप ढंग से होता है। इसे दूर किया जाना जरूरी है और यह आंदोलन से दूर होगा। उन्होंने नागरी के प्रयोग के लिए रोमन के बढ़ते प्रसार पर रोक लगाने की मांग की।

नागपुर से आए श्री रामप्रकाश सक्सेना ने जोर देते हुए कहा कि भाषा सीखने के लिए नागरी की अति आवश्यकता है और कोई भी भाषा, चाहे वह हमारे लिए कितनी ही अपरिचित हो, वह नागरी के माध्यम से सीखी जा सकती है।

श्री मु. मा जगताप ने बताया कि नागरी के विकास में यंत्रीकरण की दृष्टि से हमें तीन बातों पर ध्यान देना होगा - (1) काम की गति यंत्र से, (2) सुंदरता और (3) जो व्यक्ति मशीन पर काम कर रहा हो वह निपुर्ण हो, कोई कष्ट उसे न हो। उन्होंने इस बात पर संतोष व्यक्त किया कि इलैक्ट्रोनिक्स टापराईटर पर काम करने में टाइपिस्ट को अपने पेट पर काफी बल देना पड़ता है और कुछ घंटों बाद वह थकान का अनुभव करने लगता है पर अब नए इलेक्ट्रोनिक टाइपराइटर से उसे काम करने में सुविधा होती है - इस पर सिर्फ हल्का बल देने से काम हो जाता है। तीसरी बात सुंदरता -यह अभी आयी नही है - देवनागरी में अक्षरों की सुंदरता आनी चाहिए।

डॉ. ओमविकास (इलेक्ट्रोनिक्स अभियंता) ने कहा कि कंप्यूटर वैज्ञानिकों के समक्ष सत्यनिष्ठ समस्यायें अधिक होती है। नागरी लिपि वैज्ञानिक अधिक है - ध्वनिक्रम, विज्ञान, उच्चस्तरीय मुद्रण पद्धति जिसे आसानी से ढाला जा सकता है। साहित्य और टेक्नोलॉजी का मेल आवश्यक है और चूंकि हमारा देश बहुभाषी देश है इस दृष्टि से भाषाई संरक्षण की आवश्यकता है। साहित्य और टेक्नोलॉजी का मेल आवश्यक है।

आज की गोष्ठी में नेपाल से आए श्री सूर्य बहादुर श्रेष्ठ ने फिर अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा कि प्रश्न यह है कि क्या आज के युग में नागरी की गति रोमन लिपि से तीव्र हो सकती हैं? क्योंकि रोमन से हमारी गति कम है। केंद्रीय सचिवालय, दिल्ली के महामंत्री ने बताया कि परिषद् का 32 वां वर्ष पूरा होने वाला है। उन्होंने नागरी के अधिकाधिक प्रयोग के संदर्भ में विज्ञान को हिंदी से जोड़ने की बात कही। श्री यशपाल जैन ने नागरी के संदर्भ में श्री विनोबा भावे का यह कथन उद्धृत किया कि उन्होंने कहा था कि इस लिपि की वजह से अगर देश की एकता खंडित होती है तब मै अपने पैर पीछे कर लूंगा। श्री आनंद शर्मा शास्त्री ने कहा कि सारा संसार ब्रह्ममय है - नाम ध्वनि है उसका महत्व है।

संगोष्ठी के समापन के पूर्व डॉ. गंगाप्रसाद विमल ने ध्वनियों को लिपि से जोड़ने और चित्रांकन की जरूरत हेतु सरकार से एक विद्वत आयोग बिठाने की सिफारिश की जिसमें विभिन्न क्षेत्रों से विद्वान आयें। उन्होंने अगला सम्मेलन नेपाल में आयोजित करने का सुझाव दिया।

प्रतिवेदन में यह स्वीकार किया गया कि नागरी के प्रयोग और विकास के लिए सरकार को भी सक्रिय होना चाहिए। भारतीय अस्मिता की तलाश में नागरी की उपयोगिता अधिक है। नेपाल से आये प्रतिनिधिमंडल ने यह प्रेरणा दी है कि अगले समारोहों में फीजी, सूरीनाम, मारीशस के प्रतिनिधियों को बुलाया जाए।

परिषद् के सचिव श्री सी. ए. मेनन ने नागरी लिपि परिषद् के समक्ष चली आ रही कुछ कठिनाईयों की तरफ संकेत करते हुए बताया कि इसकी शक्ति जन शक्ति है और उसके विकास के लिए आप सबको मिलजुल कर चलना चाहिए। इसी दिन संध्या 5 बजे उपराष्ट्रपतिभवन में एक संगोष्ठी आयोजित की गई।

समापन समारोह का अंतिम पक्ष उपराष्ट्रपति महोदय डॉ. शंकर दयाल शर्मा के सान्निध्य में आयोजित गोष्ठी के साथ संपन्न हुआ। समारोह में उपराष्ट्रपति महोदय को 'इतालवी भाषा' पुस्तक भेंट की गयी। इस अवसर पर इटली के राजदूत और स्वीट्जरलैंड के कार्यवाहक राजदूत ने अपने-अपने विचार प्रकट किए। इसके अलावा सुश्री निर्मला देशपांडे, प्रो. मलिक मोहम्मद, डॉ. गंगा प्रसाद विमल और डॉ. मदनलाल ने भी अपने विचार रखे। डॉ. वीरेंद्र सक्सेना ने केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'इंदिरा गांधी का हिंदी प्रेम' महामहिम उपराष्ट्रपति महोदय को भेंट की। उपराष्ट्रपति महोदय ने नागरी लिपि पर अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया कि नागरी एक सरल, सुगम लिपि है और इसकी व्यापकता के विषय में हम सब अवगत हैं।

इस गोष्ठी में राजधानी और दिल्ली के बाहर से आए डेढ़ सौ से अधिक लोग शामिल थे। अंत में डॉ. मदनलाल ने उपराष्ट्रपति महोदय और आगत विद्वानों के प्रति धन्यवाद प्रकट किया।

□

गोष्ठी

'नए मसीहा का जन्म'

सरोज कुमार त्रिपाठी

द पोएट्री सोसायटी (इंडिया) तथा पल्लवी प्रकाशन के संयुक्त तत्वावधान में हिमाचल भवन, नई दिल्ली में श्री जगदीश चतुर्वेदी के सद्यः प्रकाशित कविता-संग्रह "नये मसीहा का जन्म" पर सुप्रसिद्ध कवि गिरिजा कुमार माथुर की अध्यक्षता एवं प्रख्यात आलोचक डॉ· नगेंद्र के सानिध्य में एक संगोष्ठी का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का संचालन कवि, कथाकार गंगा प्रसाद विमल कर रहे थे।

डॉ· विमल ने विषय का प्रवर्तन करते हुए कहा कि इस संग्रह की कविताओं में हम एक नया प्रस्थान देखते हैं। इनके प्रतीकों, बिंबों, मिथकों को देखने से लगता है कि '60 के जगदीश चतुर्वेदी और आज के जगदीश में एक फासला है। कवि की चिर परिचित आक्रामकता, घृणा आदि का रूपांतरण एक ममत्व की भावना में हुआ है। ये कविताएँ एक विशेष प्रकार का मानक स्थापित करती हैं। जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं की एक विशेषता यह भी रही है कि वह प्रत्येक कविता में एक संपूर्णता लिए उपस्थित है। इन कविताओं पर भी यह बात लागू होती है।

मूर्धन्य समीक्षक डॉ· नगेंद्र ने कहा कि वाङ्मय का सार तत्व होता है साहित्य और साहित्य का सार होती है कविता। साहित्यिक जीवन के मूल्यों का आधार कविता ही होती है। जगदीश चतुर्वेदी के प्रस्तुत संग्रह में उनकी कविता का क्षेत्र बदला हुआ है। इनमें इनकी रागवृत्ति का सूक्ष्म विकास हुआ है। अंतिम खंड को छोड़कर शेष पुस्तक में अपेक्षित मार्दव मिलता है। इनमें गंध भीनी प्रेम की अनुभूतियाँ अत्यंत कोमलता से व्यक्त हुई हैं, लेकिन विशेष परिस्थितियों में उनमें तीखापन भी दिखाई देता है। प्रकृति की कविताओं में सूक्ष्म अनुभूतियों का उद्घाटन हुआ है। व्यक्तिगत जीवन से संबद्ध कविताएँ ममत्व और व्यथा से संपृक्त है, जो मुझे अच्छी लगी। डॉ· नगेंद्र ने कहा कि संत्रास, कुंठा, घृणा, आक्रोश आदि मानव जीवन की अनुभूतियाँ हैं लेकिन उन्हें उसी रूप में अभिव्यक्त कर देने में मैं काव्य-कौशल की सफलता नहीं मानता। खुरदुरे पत्थर को कलात्मक रूप देने में कठिनाई होती है। इस प्रक्रिया में सर्जना का संघर्ष है। कोमल विषयों में संघर्ष तो नहीं होता, प्रयास भी नहीं होता, किंतु उनमें सहजता होती है। लेकिन सर्जनात्मक संघर्ष से तराश कर जो कविताएँ आती हैं उनका एक अपना ही स्वारस्य है। प्रथम खंड की कविताएँ ऐसी ही हैं। संग्रह की कविताओं में बिंब स्पष्ट हैं। कवि को शब्दों की तलाश नहीं करनी पड़ती, एक स्वतः स्फूर्त प्रवाह है। इन कविताओं से यह प्रतीत होता है कि कवि प्रौढ़ि की ओर अग्रसर है। डॉ· नगेंद्र ने अंत में आशीर्वाद के स्वर में कहा कि भविष्य में कविता की इसी सहज भूमि पर जगदीश जी और अच्छी तरह से बढ़ें यही मंगल कामना है।

युवा समीक्षक डॉ. रमेश ऋषिकल्प ने अपने आलेख में प्रतिपादित किया कि जगदीश चतुर्वेदी की कविता जिजीविषा की कविता है। इनमें राजनीतिक नारों की कृत्रिमता नहीं है। ये कविताएँ सच्चे अनुभवों अथवा अनुभूतियों के प्रति कमिटेंड हैं। "नये मसीहा का जन्म" का एक अत्यंत प्रमुख स्वर है-प्रेम। प्रेम करना एक्टिवनेस की निशानी है। हिंदी के एक कवि ने यह बात सही कही है कि शेफाली और बारूद दोनों की गंध जब किसी के लिए अनिवार्य बन जाए तो वह मोक्ष की अवस्था है। प्रेम मनुष्य की आदि प्रेरणा है, इसलिए काव्य का भी आदि तत्व है प्रेम। ये कविताएँ भावबोध एवं आधुनिक समाज के नए ट्रैक्स को समझने की सफल कोशिश हैं। डॉ. ऋषिकल्प ने अपने आलेख में दो विदेशी अंग्रेजी चिंतकों लूकाच और कॉडवेल की मान्यताओं का हवाला देते हुए जगदीश चतुर्वेदी की कविता को विश्लेषित किया।

अंग्रेजी और हिंदी की युवा समीक्षक डॉ. अनामिका ने अपना आलेख अंग्रेजी में प्रस्तुत किया। उनका अभिमत था कि जगदीश चतुर्वेदी की कविताएँ एलेन जीसबर्ग की तरह प्रभावपूर्ण हैं तथा पिछले ढाई दशकों से हिंदी कविता में चर्चा का विषय रही है। उनकी कविताएँ अपने आक्रामक रवैये के कारण बीट कवियों की कविताओं से साम्य रखती है। किंतु इस संग्रह में उनका कवि प्रेम, प्रकृति और देश-चिंता में खोया दिखाई देता है। उनके अनुसार समकालीन भारतीय कविताओं में जगदीश चतुर्वेदी अपने ढंग के अनन्य कवि हैं।

सुपरिचित समीक्षक डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने अपने संतुलित आलेख में कहा कि रचनाकार अब कई समस्याओं का रचनात्मक हल पाने में सफल हो गया है। मालवे की कविता स्मृति की परंपरा में जागरण बन गई है। उसका प्रेम एकाग्र आत्मदान प्रेरित है। अब जगदीश घृणा से भिनभिनाती स्थितियों का अनुवाद करने वाले अकविता के कवि नहीं रहे। कहीं कविता का कमजोर पक्ष यह अवश्य है कि अकेले आत्मान्वेषण की प्रेरणा कवि को घुन की तरह खाती है। ये कविताएँ रूमानी हरकतों की ऐसी गिलहरी है जो किलक सकती हैं, लेकिन परिवेश को नहीं बदल सकती।

कवि प्रताप सहगल ने अपने आलेख में कहा कि ये कविताएँ सीलबंद विचारधाराओं को तोड़ती हुई कविताएँ है। जगदीश चतुर्वेदी की कविताओं में एक बदलाव आया है, चाहे इस आते हुए बदलाव को परिवेश की दृष्टि से देखा जाए या फिजियोलॉजी से जोड़कर। आज हम विषमता और उत्पीड़न देखने के आदी हो गए है, अतः हम इन स्थितियों से टकराने के बदले एक अपना अलग संसार रचते है। संग्रह के अंतिम खंड की कविताओं के बारे में डॉ सहगल ने कहा कि जहाँ आवेश कविता पर हावी हुआ है वहाँ कविता की क्षति हुई है। यह आवेश एक बड़बोलेपन को जन्म देता है। यहाँ क्रांतिदूत कोई और होता है, कवि कोई और।

डॉ. विद्या शर्मा ने "जिद्दी औरतों के खिलाफ" कविता पर आक्षेप करते हुए कहा कि यह कविता अपने अतिवादी बिंबों के कारण कवि के पुराने रूप की याद दिलाती है। यह इन नई कविताओं के बदले हुए तेवर के अनुकूल नहीं है। कवि को नारी के प्रति प्रतिशोध का अपना रवैया बदलना चाहिए।

बंगला के प्रसिद्ध कवि श्री आशीष सान्याल ने कवि की एक कविता का बंगला अनुवाद प्रस्तुत किया, जिसे श्रोताओं ने काफी सराहा। श्री सान्याल ने कहा कि बंगला की भूमि

काव्यांदोलनों के प्रवर्तकों की भूमि रही है। जगदीश चतुर्वेदी का एक कविता संग्रह अभी बंगला में प्रकाशित हुआ है और वह समकालीन बंगला कवियों के मित्र तथा परिचित कवि है।

सुप्रसिद्ध कवि एवं समीक्षक डॉ॰ रामदरश मिश्र ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि इन कविताओं में जगदीश अकविता के मुहावरे से अलग हो रहे हैं। एक ओर वे अपनी मूल भावभूमि में एक नयापन ला रहे हैं और दूसरी ओर वे उससे हट कर एक नई भूमि और नई संवेदना की ओर उन्मुख हो रहे है। डॉ॰ मिश्र ने कहा कि कविताओं का रचना-काल मालूम नही होने से मूल्यांकन में कठिनाई अवश्य होती है। उन्होने कहा कि जगदीश चतुर्वेदी के चिर परिचित स्वर के अनेक रूप जैसे जिघांसा, घृणा आदि यहाँ भी उपस्थित हैं। इसलिए जगदीश की कविताओ में जीवन-दृष्टि का अभाव है। "जुर्म" जैसी कविता इसका प्रमाण है। महज अपनी छत पर खड़े होकर हँसने के जुर्म में लड़की से हुए बलात्कार के औचित्य-प्रतिपादन में कौन-सी जीवन-दृष्टि है? डॉ॰ मिश्र ने यह भी कहा कि अनेक कविताओं में जीवन-दृष्टि के अभाव के बावजूद कवि की सौदर्य-अनुभूति बड़ी अच्छी तरह से व्यक्त हुई है। "सोना बिखेरते हाथ" जगदीश चतुर्वेदी की जमीन से अलग की कविता है लेकिन लगता है कि उससे कवि का तादात्म्य नहीं हो पाया है। डॉ॰ मिश्र ने कहा कि आक्रोश की कविताओं में ऐसा लगता है कि कवि गुर्रा रहा है। वस्तुतः व्यक्तिगत हिंसा से हिंसा का उन्मूलन नही हो सकता। उनका यह आरोप नये मसीहा का जन्म कविता पर था।

प्रसिद्ध समीक्षक डॉ हरदयाल ने कहा कि यहाँ तक पहुँचते-पहुँचते कवि परिपक्व हो गया है लेकिन इस संग्रह में भी अकविता की मनः स्थिति मौजूद है। कुछ भी हो, जगदीश की कविताएं ऐसी हैं जिनके पक्ष या विपक्ष में प्रतिक्रिया व्यक्त किए बिना रहा नही जा सकता। वह एक बहुचर्चित कवि हैं और पिछले तीन दशकों से उनकी चर्चा रही है।

कथाकार डॉ॰ मधुकर गंगाधर ने संगोष्ठी की एकरसता भंग करते हुए कहा कि आलेख के आतंक से हम सब आक्रांत हो रहे हैं। कविता के लिए इस तरह के घिसे-पिटे मापदंडों और विश्वविद्यालयीय व्याख्याओं की उपादेयता पर प्रश्न-चिह्न लगाते हुए डॉ॰ गंगाधर ने कवि से यह सवाल किया कि मसीहा से उनका क्या तात्पर्य है? उन्होंने पूछा कि यह नया मसीहा भी क्या जनवादी मसीहा की नकल मात्र है। दुर्वासा आलोचकों को अपने कोप का संवरण करने की सलाह देते हुए मधुकर गंगाधर ने कहा कि दुर्वासा ऋषि भी विवाह के दिन किसी बधू को शापनहीं देते।

श्री जगदीश चतुर्वेदी ने कहा कि इसी मसीहा ने कभी निषेध की कैंची चलाई थी तो पूरे माहौल में हाय-तौबा मचा था, फिर जब वह तटस्थ द्रष्टा बना तो उस पर विचारशून्यता का आरोप लगाया गया। दरअसल यह (नया) मसीहा तमाम कुरूपताओं को देखकर अवसन्न रह गया है। स्थितियाँ तो आज भी वही हैं जो अकविता लिखवाती हैं। अकविता आंदोलन सिर्फ हिंदी जगत का ही उबाल नहीं था, बंगला, तेलुगु आदि भाषाओं में भी वह गुस्सा भूखी पीढ़ी, दिगंबर पीढ़ी आदि आंदोलनों के रूप में प्रकट हुआ। आज भी परिवेश उसी तरह विषम है। देश में वैसा ही संकट है। लेकिन मेरी आवाज आज अवसन्न हो गई है। मै चुप्पी की कविताएँ करने को अभिशप्त हूँ। यों मेरा वह आक्रोश कई कविताओं में व्यक्त हुआ है। जगदीश चतुर्वेदी ने कहा कि कविता उथल-पुथल करती रहे ऐसा मैं सदा से चाहता हूँ।

प्रगतिशील चिंतक चंचल चौहान ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि इन कविताओं में एक जीवन-दृष्टि है। इनमें आधुनिकतावाद की विचार-सरणि मौजूद है। अज्ञेय का उदाहरण (उद्धरण) देकर चचंल जी ने अपनी बात सिद्ध की। उन्होंने कहा कि इनमें कवि जगदीश चतुर्वेदी ने वर्गीय मानसिकता को ड्रैमेटिक रूप से रखा है। इनकी कविताओं में व्याप्त "अकेलेपन" को उन्होंने पुस्तक के उद्धरणों द्वारा सिद्ध किया।

डॉ. श्याम सिंह शशि ने कहा कि मैंने सब्जेक्टिव एवं ऑब्जेक्टिव दोनों रूपों में जगदीश चतुर्वेदी को पढ़ा है। परिस्थितियाँ कविता लिखवाती हैं। जगदीश ने कई साहित्यिक युद्ध लड़े हैं, उनका प्रतिफलन उनकी कविता में स्वाभाविक है। निश्चय ही इन कविताओं में जगदीश एक नए रूप में सामने आए हैं। डॉ. शशि ने कहा कि "अपराध" तो विधि क्षेत्र का विषय है, मानवीय संदर्भ में "पाप" शब्द शायद अधिक सटीक होता। कदाचित "संभवामि युगे-युगे" का विश्वास ही कवि से नये मसीहा का जन्म लिखवाता है।

डॉ. विनय ने कहा कि अपनी आत्मीयता के कारण जगदीश चतुर्वेदी में कविताओं को ढूँढ़ना या कविताओं में जगदीश को ढूँढ़ना मेरे लिए आसान है। लेकिन उसकी कविता की व्याख्या करने में कठिनाई होती है। स्थगित प्रकाश की कविताएँ लिखने वाले इस कवि में शेष बचे प्रकाश को संचित कर लेने की ललक है। कवि में ग्रहण करने और छोड़ने की प्रक्रिया घटती रही है। दिनकर में "हारे को हरिनाम" तक आते-आते जो विवशता ओर पराजय की मानसिकता हावी हो गई थी, वैसी जगदीश की कविताओं में नहीं है। जगदीश ने पुरानी मानसिकता को तोड़ा है, उसका अवमूल्यन नहीं किया। यह रास्ता बनाने की प्रक्रिया इनमें पहले से ही विद्यमान थी। "सूर्यपुत्र" जैसी कृति इसी प्रक्रिया का परिणाम थी जो अकविता आंदोलन के दौरान लिखी गई। डॉ. विनय ने कहा कि वस्तुतः न तो प्रगतिशील कविताएँ और न ही जगदीश की कविताएँ बेमानी हैं।

तमिल लेखक श्री सुंदरम ने कहा कि मु. मेत्ता आदि कवियों की कविताएं जगदीशजी जैसी हैं और वे अपने भारतीय समकालीनों का जिक्र करते हुए जगदीश चतुर्वेदी की चर्चा करते रहते हैं।

प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. गोपाल शर्मा ने जगदीश चतुर्वेदी से अपने आत्मीय संबंध बताते हुए उनके प्रारंभिक कवि-जीवन से आज तक के विकास-क्रम की प्रशंसा करते हुए उनको एक सतत सृजनशील व्यक्ति माना। उनकी संपादकीय दृष्टि प्रखर है। उन्होंने जो कविताएँ छापी वे कई संकलनों में सम्मिलित की गईं।

संगोष्ठी के अध्यक्ष श्री गिरिजा कुमार माथुर ने कहा कि लेखक या कवि के रूप में जानने से पहले मैं जगदीश को व्यक्तिगत रूप से सन् 1943 से ही जानता हूँ। इनकी कविताओं में अकेलापन या प्रतिशोध आदि की जो गूंज सुनाई पड़ती है, उसकी सहज संगति बैठाने में मुझे कोई परेशानी नहीं होती। ये प्रवृत्तियाँ उस परिवेश और परिस्थिति की उपज हैं, जिसमें जगदीश का बचपन मालवा में बीता। फिर इनके विकासकाल में विश्व में ऐसी घटनाएँ घटीं, जिनका असर किसी भी संवेदनशील साहित्यकार पर होना स्वाभाविक था। साथ ही मालवे की जमीन का सौंदर्य-बोध इनकी सहज भूमि है। श्री माथुर ने कहा कि मैं निषेध का विरोधी हूँ। यह निषेध नाजीवाद और हिटलर को जन्म देता है। सन् 1960 के बाद के दौर में चारों ओर आक्रोश का

यह स्वर क्यों मुखर था ? युवा-पीढ़ी में विद्रोह की यह भावना सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि इंगलैंड, यूरोप, जर्मनी, चीन, अमरीका सब जगह व्याप्त थी। इस सबका सामाजिक आधार पर मूल्यांकन किया जाना चहिए। इसमें मार्क्सवादी दृष्टि अवश्य सहायक हो सकती है। पुराना मार्क्सवाद भी आज आधुनिक मानवीय संदर्भों की पृष्ठभूमि में बदल रहा है। प्रगतिशीलता प्रयोगधर्मी सामाजिकता, नवरोमानी कविता तथा नयी कविता से लेकर अकविता और आज तक समकालीन कविता का फिर से तथ्यपरक अध्ययन-मूल्यांकन किया जाना चाहिए। □

इस अंक के लेखक

डॉ. नगेंद्र	आधुनिक हिंदी साहित्य के वरिष्ठतम आलोचक । इतिहासकार, शिक्षाविद्, गद्य शैलीकार । पचास से अधिक मानक कृतियों के प्रणेता । अंग्रेजी साहित्य के भी मूर्धन्य विद्वान । आकाशवाणी और बाद में दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष । सम्प्रति : प्रोफेसर "एमेरिटस" । संपर्क : 166, वैशाली, पीतमपुरा, दिल्ली ।
प्रो. इंद्रनाथ चौधुरी	हिंदी के प्रख्यात विद्वान, आलोचक, समीक्षाकार । बहुभाषा विद् । हिंदी, अंग्रेजी, बांग्ला, संस्कृत पर समान अधिकार । भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-शास्त्र का गहरा अध्ययन । साहित्यिक प्रतिनिधि के रूप में अनेक देशों की यात्राएं । संप्रति : सचिव, साहित्य अकादेमी, रवीद्र भवन, फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली 10001
गुणाकर मुले	वैज्ञानिक विषयों के प्रसिद्ध लेखक । भारत के प्राचीन गणित, खगोल शास्त्र, नक्षत्र गणना, वास्तुशिल्प, धातुकर्म, रसायन आदि के प्रख्यात लेखक । वेद, उपनिषद, संस्कृत वाङ्मय का गहन अनुशीलन । संपर्क : अमरावती, सी - 210, पांडवनगर, दिल्ली 92
जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी	हिंदी के वरिष्ठ पत्रकार । जन संचार विशेषज्ञ । पिछले पैंतालीस वर्षो से स्वतंत्र लेखन । भारतीय पत्रकार संघ के पूर्व अध्यक्ष । फीजी पर महत्वपूर्ण पुस्तक । संपर्क : 55, काकानगर, नयी दिल्ली ।
डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय	कथाकार, आलोचक । विशिष्ट पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं । संप्रति : रीडर एवं अध्यक्ष (हिंदी विभाग) आर पी एस कालेज भुरिया धनबाद (बिहार) संपर्क : वृंदावन, राजेंद्र पथ, धनबाद (बिहार) ।
डॉ. राम प्रकाश सक्सेना	हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक, एकांकीकार । पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित । संप्रति : अध्यक्ष, पत्रकारिता विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, ग्रंथालय बिल्डिंग, नागपुर 440010

विश्व मोहन तिवारी	कविता, संस्मरण, यात्रा-विवरण, प्रकृति संबंधी विषयों का विशेष अध्ययन। पर्वतारोहण एवं ललित कला के संबंध में विशेष रूचि। 'बेघर' कविता-संग्रह। संप्रति : एयर वाइस मार्शल के पद पर वायुसेना मुख्यालय नयी दिल्ली में निदेशक। संपर्क : सी -2/75 मोती बाग नयी दिल्ली।
वीरेंद्र सक्सेना	पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, कविताएं। रेडियो, दूरदर्शन से रचनाओं का प्रसारण। कहानी, उपन्यास और कथा-काव्य की पुस्तकें। संप्रति : सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नयी दिल्ली संपर्क: 18/11 पुष्पविहार, नयीदिल्ली 110017
डॉ रमाशंकर श्रीवास्तव	कथाकार, समीक्षक और हास्य व्यंग्यकार। सात उपन्यास, तीन व्यंग्य संग्रह और आलोचना की पुस्तकें। पिछले दो दशक से राजधानी कालेज के हिंदी विभाग में अध्यापन। संपर्क : आर-7 वाणी विहार, उत्तम नगर, नयी दिल्ली 110059
डॉ. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	छायावादोत्तर काल के प्रख्यात कवि, कथाकार, आलोचक एवं चिंतक। चौथे दशक में नवरोमानी एवं सामाजिक चेतना के संवाहक, शिक्षाविद्। नयी प्रगीत विधा में अमूल्य योगदान। संप्रति : सभापति, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। संपर्क : पचपेढ़ी, दक्षिणी सिविल लाइंस, जबलपुर (म. प्र.)।
डॉ विनय	समकालीन पीढ़ी के प्रतिष्ठित कवि। आलोचक, नाटककार। मिथकीय चरित्रों पर आधुनिक विश्लेषण सहित अनेक काव्यों के प्रणेता। संपादक "दीर्घा"। संप्रति : वरिष्ठ प्राध्यापक (हिंदी) दिल्ली विश्वविद्यालय संपर्क : 25 बैंग्लोरोड, कमलानगर, दिल्ली।
डॉ. अनामिका	समकालीन हिंदी कविता की युवा पीढ़ी की प्रतिभाशाली कवयित्री। हिंदी और अंग्रेजी में समान लेखन, अनुवाद कार्य। अंग्रेजी साहित्य में पी. एच. डी.। दिल्ली विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग में अध्यापन। संपर्क : डब्ल्यू. यू. एस. हॉस्टल, छात्रा मार्ग (निकट भारतीय कॉफी हाउस) दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली 110007
डॉ. उपेंद्र रैणा	श्रीनगर (कश्मीर) में जन्मे युवा पीढ़ी के सुपरिचित कवि। हिंदीतर क्षेत्र मे हिंदी साहित्य में पी-एच. डी. तथा श्रीनगर में हिंदी अध्यापन। संप्रति : आकाशवाणी विदेश सेवा प्रसारण, नयी दिल्ली में कार्यक्रम अधिकारी।

सुनीता बुद्धिराजा

युवा पीढ़ी की सुपरिचित कवयित्री। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लेखन। रेडियो, दूरदर्शन माध्यम का विस्तृत अध्ययन व विशेष कार्य।
संप्रति: ज्वाइंट डिविजनल मैनेजर, एम. एम. टी. सी. लोदी एस्टेट, नयी दिल्ली।

इंदु जैन

आधुनिक हिंदी कविता की प्रतिष्ठित कवयित्री। समकालीन जीवन की टकराहट से उत्पन्न नए भाव बोध की पहचान कराने से समर्थ।
संप्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के इंद्रप्रस्थ कालेज में वरिष्ठ प्राध्यापक।
संपर्क: ए/1 इंद्रप्रस्थ कालेज स्टाफ क्वार्टर्स, दिल्ली।

ब्रजेंद्र त्रिपाठी

'विक्षुब्ध वर्तमान' कविता संग्रह में सहयोगी कवि। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं।
संपर्क: 208 कटवारिया सराय, नयी दिल्ली 110016

डॉ. प्रभाकर माचवे

आधुनिक हिंदी प्रयोगवादी कविता के मूर्धन्य हस्ताक्षर। प्रख्यात कवि, आलोचक, कथाकार, व्यंग्य कार, बहुभाषा विद्, चित्रकार। साहित्य अकादेमी के पूर्व सचिव। संघलोक सेवा आयोग एवं भारतीय भाषा परिषद् कलकत्ता के हिंदी निदेशक।
संप्रति : संपादक "चौथा संसार"।
संपर्क : 73 बल्लभ नगर, इंदौर 452003।

डॉ. गुरचरण सिंह

तीन उपन्यास। आलोचना की दो पुस्तकें। पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं।
संपर्क: 6/15 अशोक नगर, नयी दिल्ली 110018

रागिनी सिन्हा

नयी पीढ़ी की लेखिका। पत्र-पत्रिकाओं में नियमित लेखन।
संप्रति: भारतीय राजदूतावास, पारामारिबो, सूरीनाम।

फार्म - 4

1.	प्रकाशन स्थान	भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयीदिल्ली - 110002
2.	प्रकाशन अवधि	त्रैमासिक
3.	मुद्रक का नाम	ललित मानसिंह
	क्या भारत का नागरिक है	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
	पता	महानिदेशक भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली
4.	प्रकाशक का नाम	ललित मानसिंह
	क्या भारत का नागरिक है	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
	पता	भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थइस्टेट, नयीदिल्ली
5.	संपादक का नाम	गिरिजा कुमार माथुर
	क्या भारत का नागरिक है।	हां
	(यदि विदेशी है तो मूल देश)	
	पता	भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली
6.	उन व्यक्तियों के नाम व पते जो समाचार-पत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूंजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार हों।	ललित मानसिंह, भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, आज़ाद भवन, इंद्रप्रस्थ इस्टेट, नयी दिल्ली

मैं, ललित मानसिंह एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

ह॰/ललित मान सिंह
प्रकाशक के हस्ताक्षर

दिनांक: 28.2.1989